व्यष्टि से समष्टि

SRS
03/04/05

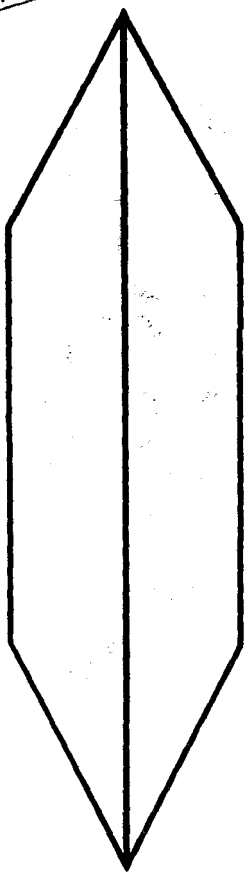

पं० रामप्रकाश मिश्र

व्यष्टि से समष्टि

पंडित रामप्रकाश मिश्र

प्रकाशक

पारसनाथ ओझा

1 सी0, स्वांग, जिला-बोकारो, पिन-129128

दो शब्द

संगठन का घटना–बढ़ना नैसर्गिक नियम है। संगठन की सदस्यता बढ़ भी जाय तो संगठन की शक्ति का निकश (कसौटी) एकात्म कार्यकर्त्ता समूह है। इस दृष्टि से संगठनकर्त्ता को सदैव एकात्म समूह के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिये। अधिकार और कर्तव्य एक ही सिक्के के दो पहलू हैं किंतु इतने मात्र से कर्तव्य बोध का होना संभव नहीं है। इसके लिए अधिक लगन और सतत् प्रयास की आवश्यकता होती है।

किसी भी सत्कार्य की दृष्टि से कार्यकर्त्ता का सबसे अधिक महत्वपूर्ण पहलू है उसका स्वयं का संगठन के प्रति आत्म समर्पण। यदि आत्म समर्पण न रहा तो अधिक से अधिक योग्यता रखने वाला व्यक्ति संगठन कार्य के लिए अनुपयुक्त होगा। जो आत्म समर्पित नहीं है उस पर विश्वास करना बहुत बड़ी भूल होगी। आत्म समर्पण व्यक्तिगत् व्यवहार, चिन्तन और मनन से निर्मित होता है। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि कार्यकर्ता स्वयं का निरन्तर आत्मनिरीक्षण करता रहे।

ध्येयवादिता, नियमों का कठोरता के साथ पालन करना, एक ध्येयवादी जीवन जीना, आदर्शवादी कार्यकर्ता का लक्षण है। ऐसे ही कार्यकर्त्ताओं के बल पर संगठन चलता और बढ़ता है।

आन्तरिक शक्ति की दृढ़ता मनुष्य को वीरव्रती बना देती है। दुबला–पतला कोमल आयु का खुदीराम बोस, सिक्खों के दशम गुरू के दो नन्हें बालकों की आन्तरिक शक्ति ने ही उन्हें बलिदान होने की दृढ़ता प्रदान की।

इस पुस्तक में जीवन मूल्य के धनी, वीरव्रतियों एवं कार्यकर्त्ताओं के लिए किन–किन गुणों को अर्जित करना आवश्यक है उसका वर्णन किया गया है। साथ ही कर्म और अकर्म का भी उल्लेख है।

कार्यकर्ताओं को संगठन चलाने के लिए किन–किन बातों की आवश्यकता होती है उसको ध्यान में रखकर यह पुस्तक लिखी गई है। इस कार्य में हमें कितनी सफलता मिली है इसका निर्णय तो पाठक ही करेंगे।

- रामप्रकाश मिश्र

जीवन मूल्य

संसार में अलग–अलग प्रकार के जीवन मूल्य हैं। आज कार्यकर्ता किस प्रकार का जीवन मूल्य स्वीकार करे वह आज के लिये ही नहीं, अपितु हमेशा के लिये सोचने की बात है। हमारे सार्वजनिक जीवन में कुछ अलग प्रकार के मानदण्ड प्रभावी हैं। राजनीतिक क्षेत्र में तो इस बात की होड़ लगी है कि ज्यादा से ज्यादा ऊँचा पद कौन प्राप्त कर सकता है ? चालाकी और कई प्रकार के तिकड़म, ऊँचे–नीचे हथकण्डे अपनाते हुए जो ऊँचे पद और ज्यादा सम्पत्ति प्राप्त कर लेता है उसी को व्यवहार कुशल, व्यवहार चतुर एवं बड़ा नेता माना जाता है।

आज के वातावरण में लोगों को कुछ आदतें लग रही हैं, वे आदते बुरे संस्कार का रूप ले रही है। इसीलिये किसी काम को अधिक दिनों तक करते रहने को मूर्खता समझा जाता है । जो चतुर हैं व अपना काम जल्दी कर लेते हैं। यह सत्य है कि चालाकी से बड़ा काम नहीं हो सकता है। हाँ चालाकी से कार्य हो सकते हैं किंतु बड़ा काम नहीं हो सकता है। कुछ लोगों को कुछ समय के लिए बेवकूफ बनाया जा सकता है। जो काम बड़ा है उसे धीरज से समझ कर लगातार करना पड़ता है।

जल्दीबाजी से काम करना ठीक नहीं है। एक कहावत है छोटा मार्ग तुझे ही छोटा कर देगा (Short cut will cut you short) इसलिए शार्ट कट से नहीं धैर्य से काम लें। समय आने पर काम पूरा होकर ही रहेगा।

प्रसिद्धि और हवा संगठन मजबूत होने का विकल्प नहीं है। राजनीतिक नेता कहते हैं–"यदि प्रसिद्धि जोरदार रही तो अपने पक्ष में हवा निर्मित होगी। हवा के कारण सफलता मिल जायेगी। कार्य करने की आवश्यकता जो कार्यकर्ताओं की होगी वह स्वयं पूरी हो जायेगी।" इसलिए केवल हवा निर्माण हो और वातावरण बन जाये तथा जोरदार प्रचार भी हो तो प्रसिद्धि हो जायेगी और सफलता

मिलकर रहेगी। निस्सन्देह नेताजी का यह मार्ग अपनाना संगठन के हित में नहीं है। यह मार्ग संक्षिप्त मार्ग ही है जो अपनाने वाले को अपने आप से छोटा कर देगा।

प्रचार और प्रसिद्धि का अपना महत्व है किंतु इसकी भी एक सीमा होती है। जैसे यदि वर्षा आवश्यकता से अधिक हुई तो गीला अकाल आता है और यदि वर्षा आवश्यकता से कम हुई तो सूखा अकाल आता है। इष्टतम बिन्दु से वर्षा कम या अधिक घातक है। उसी तरह आवश्यकता से अधिक प्रसिद्धि के कारण प्रतिस्पर्धियों की जिद अधिक बढ़ती है और अपने आसपास आत्म सन्तोष का भाव और प्रभाव बढ़ता है। प्रसिद्धि व प्रचार के कारण लोगों को आत्मवंचना हो जाती है। काम बहुत कर लिया है अब अधिक करने की आवश्यकता नहीं है। धीरे–धीरे काम बढ़ाना इसे मूर्खता समझा जाता है। बुद्धिमानी का सरल मार्ग यह है कि एक–एक व्यक्ति को सम्पर्क किया जाय किन्तु इसके स्थान पर प्रसिद्धि के माध्यम से खटाक से अपनी उज्जवल छवि बनाई जाय ऐसा आज के नेता सोचते हैं।

प्रसिद्धि बड़ी खतारनाक होती है । यदि किसी के मन में एक बार प्रसिद्धि प्राप्त करने की इच्छा जागृति हो गई तो ठोस काम करने की प्रवृत्ति के साथ ही जीवन मूल्य में भी गिरावट आती है। प्रसिद्धि प्राप्त करने में योग्यता की आवश्यकता कम होती है । परिश्रम भी कम करना होता है। प्रसिद्धि के साधनों से सम्पर्क करने के बाद योग्यता और परिश्रम की आवश्यकता कम हो जाती है किन्तु लाभ अधिक दिखाई देता है। प्रसिद्धि के लिए आपस में प्रतिस्पर्धा प्रारंभ हो जाती है।

यह ठीक है कि कार्य वृद्धि के लिए प्रचार की आवश्यकता होती है। जब धीरे–धीरे प्रचार बढ़ने लगता है तो मन में आता है कि अपना समाचार, समाचार पत्रों में नित्य प्रकाशित हो साथ में यदि चित्र छपता है तो और अच्छा लगता है। धीरे–धीरे अपना चित्र देखने की इच्छा बढ़ने लगती है। अपना स्वयं के भाषण का कैसेट तैय्यार

हुआ हो उसको सुनने की प्रबल इच्छा होती है। इस प्रकार अपनी आवाज और अपने चित्र के प्रति आकर्षण बढ़ जाता है।

ग्रीक पुराण में एक कहानी प्रचलित है। एक लड़का अत्यन्त सुन्दर था किन्तु उसने कभी अपना चेहरा आइने में नहीं देखा था। उस समय आइना नहीं होता था। एक दिन उसने शांत निर्मल जल में अपनी परछाई को देखा। उसने समझा कि यह किसी सुन्दर लड़की की परछाई है। उस पर वह मोहित हो गया। उससे शादी रचाने की चिन्ता में तड़प–तड़प कर मर गया। नेता भी अपनी आवाज, अपने चित्र व भाषण पर मोहित होते हैं। यदि उनके भाषण का कैसेट तैय्यार किया गया है तो उसे बार–बार सुनने की इच्छा होती है। यदि समाचार पत्रों में चित्र छपा है तो उसे देखने की प्रबल इच्छा होती है। नेता का भाषण यदि समाचार पत्रों में छपा है तो उसे बार–बार पढ़ने की इच्छा कहती है। वे यह भूल जाते हैं कि वह अपनी आवाज चित्र एवं भाषण पर उसी प्रकार मोहित हैं जैसे वह सुन्दर लड़का अपनी ही परछाई पर मोहित हुआ था।

हां, प्रचार होना चाहिये उतना, जितना आवश्यक है किन्तु अनजाने में धीरे–धीरे नेता में अपने प्रति मोहित होने का भाव प्रकट होता है । यदि बड़ा काम कराना है तो जल्दबाजी ठीक नहीं है। यदि हम धीरे–धीरे लगन से सोच समझकर काम में लगे रहें तो आत्म सन्तोष प्राप्त होगा। कहा गया है कि–

शनैः कंथा शनैः पंथा शनैः पर्वत मस्तके।
शनैः विद्या शनैः वित्तम् पंचतानि शनैः शनैः।।

गुदड़ी बुनना, मार्ग चलना, पर्वत पर चढ़ना, विद्या और धन ये पाँचों धीरे–धीरे आते हैं। यदि कोई कार्य धीरे–धीरे और प्रमाणिकता से किया जाय तो ठीक होगा। काम जितना बड़ा होगा उतने धीरज की आवश्यकता होगी। धीरज के कारण ध्येयवादी की शक्ति बढ़ती है, आत्म विश्वास बढ़ता है, जिसमें आत्म विश्वास नहीं होता है वह असफल होता है। लड़ाई पर उतरने से पहले ही हार जाता है।

आचार्य चाणक्य एक दिन अपने गुप्तचर से जानकारी ले रहे थे कि राज्य का क्या समाचार है। उसने बताया कि अमुक राजा उनको छोड़कर शत्रुपक्ष में गया है। वह वीर भी उनको छोड़ गया है आदि आदि। चाणक्य ने कहा कि जिनको छोड़कर जाना था वे पहले ही चले गये हैं, जो आगे छोड़कर जाना चाहते हैं वे भी चले जाँय कोई चिन्ता की बात नहीं है। केवल मेरी बुद्धि मुझे छोड़कर न जाय। इच्छित फल प्राप्त करने में वह बहुत बड़ी सहायक रही है। यदि वह मेरे साथ रहती है तो हमें कोई चिन्ता नहीं करनी है। चाणक्य का यह आत्म विश्वास उन्हें सफलता के शिखर पर पहुंचाने में सहायक बना है।

केवल जय–पराजय ही नेतृत्व को आँकने की एक मात्र कसौटी नहीं है। यदि पहाड़ तोड़ते समय हाथी के दांत टूट जाँय तो उसके टूटे दाँत सराहनीय होते हैं। एकाध पराजय के कारण नेतृत्व की निन्दा करने, निराश और कुण्ठित होने की आवश्यकता नहीं है। विजय के बाद आत्म श्लाघा की आवश्यकता नहीं है क्योंकि जय–पराजय कई परस्पर सम्बन्धित बातों पर अवलम्बित रहती हैं, जिनमें एक बात नेतृत्व क्षमता भी है।

ऐसा देखा गया है कि जो लोग संकट के समय आगे आकर उसका सामना करते हैं। विजय काल या प्रमाद काल या यश प्राप्त होने पर जब उनमें थोड़ा उपलब्धि का सन्तोष आ जाता है तो वे सोचते हैं कि हम अब बन गये पूर्ण हो गये। इस कारण स्वयं अपने को न पता लगते हुए पहले की लगन धीरे–धीरे समाप्त हो जाती है।

फ्रांस के लुई के सरदार बहुत बहादुर थे। सभी युरोपीय राष्ट्रों पर फ्रांस का प्रभाव था। राजा लुई को चिन्ता हुई कि हमारे सरदार जिस प्रकार बाहर के राष्ट्रों के लिए आंतक बन गये हैं उसी प्रकार किसी दिन उन्हें भी तकलीफ दे सकते हैं। लुई के प्रधान मंत्री ने उन्हें सलाह दी कि एक बड़ा महल बनवाया जाय जिसमें सभी सरदारों को रखा जाये । सभी प्रकार की सुविधा उन्हें दी जाय, जो सुविधा राजा को मिलती है उन्हे वह सुविधा दी जाय। सबके रहने

के लिए सम्मानजनक व्यवस्था की गई। ऐशो आराम की सब तरह की सुविधा उपलब्ध करा दी गई। सभी आराम से रहने लगे। परिणाम यह हुआ कि दस वर्ष बाद सरदार वर्ग में कोई कर्त्तव्यवान पुरूष निर्माण ही नहीं हुआ। अर्थात् सुख और वैभव की असीमितता ने उनका पराक्रम ठन्डा कर दिया। राजनीतिक दलों की बैठकें पांच सितारा होटलों में होती हैं । वे सुख का जीवन चाहते हैं । वे भूल जाते हैं कि यह सुख सुविधा उन्हें गर्त में ले जायेगी। धीरे–धीरे उनकी आदते बिगड़ जायेगीं।

यह बात सही है सब को सुख चाहिए । जीवन का लक्ष्य है सुख । प्रश्न है यह सुख कैसे प्राप्त किया जाय । इसके बारे में भारत में पूरा तत्व ज्ञान है ।

जीवन को दो टुकडों में नहीं बाटा जा सकता है। जीवन एक और एकात्म है, जिसके अलग–अलग देखने के पहलू हैं। एक है सैद्धान्तिक और दूसरा है व्यवहारिक। कुछ लोग कहते हैं–सैद्धान्तिक दृष्टि से काम ठीक है लेकिन व्यावहारिक दृष्टि से दुनिया में यह नहीं चलता। अपने यहां सुख दुःख की बड़ी सरल परिभाषा की गई है।

अनुकूलं संवेदनात्मक सुखम्।

प्रतिकूलं संवेदनात्मक दुःखम्।।

जिसके कारण अनुकूल संवेदना होती है उसे सुख कहते हैं। जिसके कारण प्रतिकूल संवेदना हो उसे दुःख कहते हैं । स्टालिन की पुत्री स्वेतलाना भारत आयी थीं। पत्रकारों ने उनसे पूछा कि आप भारत क्यों आई हैं और क्या चाहती है ? स्वेतलाना जिसके पास अकूत धन सम्पति है ने कहा "मैं भारत में इसलिए आई हूँ कि गंगा के किनारे एक कुटी बनाकर रहूँ और अपने जीवन का अन्तिम काल बिताऊँ।" अभी पन्द्रह वर्ष पूर्व हेरी फोर्ड का नाती भारत आया था। उससे भी संवाददाताओं ने पूछा "आप हरे राम, हरे कृष्ण के चक्कर में कैसे आ गये।" वह बोला, "इससे मुझे शान्ति मिलती है।" फिर आप के पास जो अकूत सम्पति है उसका क्या होगा? उसने उत्तर

दिया, "सारी सम्पति भगवान कृष्ण की है।" हमारे भारत का प्रगतिवादी आदमी इसे मूर्खता पूर्ण बात कहेगा।

सत्य यह है कि केवल अर्थ और काम के प्रभाव से मनुष्य सुखी नहीं रह सकता है। इससे दुःख ही बढ़ता है। इसी से हमारे द्रष्ट्राओं ने कहा है। घनीभूत, चिरंतन, निरंतर सुख, अर्थात् मोक्ष्य मनुष्य जीवन का लक्ष्य है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए मनुष्य की अपनी रूचि, प्रतिभा, प्रकृति परिस्थिति, अपने अपने शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक अध्यात्मिक स्तर आदि सभी बातों का विचार करते हुए अपने मार्ग का निर्धारण करना चाहिए। अर्थ और काम का किसी को भी अभाव न हो यह जिम्मेदारी समाज की है। अर्थ और काम का प्रभाव मन पर न हो यह जिम्मेदारी व्यक्ति के मनोरचना की है। इसलिये अर्थ और काम का अभाव भी न हो और अर्थ और काम का प्रभाव भी न हो—अभावों वा प्रभावों वा यत्र नास्ति। जब ऐसी अवस्था होती है तो समाज स्वात्म रूप में आ जाता है और फिर धर्म चक्र प्रवर्तन शुरू हो जाता है।

राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जीवन मूल्य बदले हैं। इसके पूर्व राम प्रसाद विस्मिल ने कहा था—

सरफरोशी की तमन्ना आज हमारे दिल में है,
देखना है जोर कितना बाजुये कातिल में है।
खींच कर लाई थी सबको कत्ल होने की उम्मीद,
आशिकों का आज जमघट कोचये कातिल में है।

यदि ये पंक्तियों आज कहनी हो तो वे कहेंगे कि "खींचकर लाई थी सबको कत्ल होने की उम्मीद" के स्थान पर खींच कर लाई थी सब को मंत्री होने की उम्मीद । सभी मंत्री बनने के इच्छुक हैं। अब देश में ऐसे पागल लोग कहां मिलेंगे ? मिलते ही नहीं।

अपने एक संत थे कुंभन दास जिनको अकबर बादशाह ने बुलाया तो उन्होंने कहा कि मैं अकबर के दरबार में नहीं जाता। क्योंकि "आवत जात पनहिया टूटत विसरत हरि के नाम।" वे नहीं गये।

एक दूसरा उदाहरण सिकन्दर बादशाह के समय का है। उनके राज्य में डायजेनिस नाम के एक महान दार्शनिक थे। सिकन्दर ने सोचा ऐसे महान पुरूष को दरबार में बुलाना चाहिए। सिकन्दर ने उन्हें बुलवाया वे नहीं आये। बादशाह एक दिन स्वयं चलकर उनके पास आये। अपना परिचय दिया कि मैं सिकन्दर हूँ। मैं विश्व विजयी हूँ। डाइजेनिस कुछ बोला नहीं। सिकन्दर ने कहा जो मांगना है मांग लो दुनियाँ में ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो आपको नहीं दे सकता। डाइजेनिस मुस्कराये और कहा, "जो मांगूगा वह दोगे"–सिकन्दर ने कहा, "अवश्य दूँगा।" डाइजेनिस टब में लेटकर धूप स्नान कर रहे थे। डायजेनिस ने मुस्कराते हुए कहा कि आप खड़े हैं। मेरे ऊपर रोशनी न आकर आपकी परछाई पड़ रही है। कृपया बगल हट जाइये ताकि मैं ठीक से धूप स्नान कर सकूँ। एक ओर दुनिया का बादशाह कह रहा है मुझसे जो मांगना हो मांग लीजिये। दूसरी ओर वह आदमी कह रहा है कि जरा बगल हट जाइये ताकि सूर्य की किरणें सीधी मेरे शरीर पर पड़ सके।

क्राइस्ट के तीन सौ वर्ष तक पूरा साम्राज्य का वर्चस्व बना रहा। सम्पूर्ण वैभव और सम्पत्ति रोम में इकट्ठी थी। इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि इस तीन सौ साल में लोग इतने विलासी हो गये कि उनका वर्चस्व समाप्त हो गया। बहादुरी समाप्त हो गई। यह काम धीरे–धीरे होता है। पता नहीं चलता है। यदि व्यक्ति स्वयं अपने बारे में सचेत न रहे तो उसका संभलना मुश्किल हो जायेगा। जैसे–जैसे संकट आया बहादुरी का थोड़ा प्रकाश दुनियाँ को दिखाई देता है। उन्हें थोड़ी विजय प्राप्त होती है। कुछ अच्छी व्यवस्था तैय्यार हो जाती है। तो मनुष्य का जैसा स्वभाव है उसमें परिवर्तन आता है किंतु यह परिवर्तन आहिस्ता–आहिस्ता होता है। यदि मनुष्य संभले न तो उसका पतन हो जाता है।

हम अच्छे हैं तो लोगों के मन में हमारे प्रति आदर का भाव भी रहता है। आदर भाव के कारण वे हमारी सेवा भी करते हैं। अपनी भी सेवा लेने की आदत पड़ जाती है। उनका भी स्वावलंबन समाप्त

विलम्ब से पहुंचने के पीछे राजनीतिक नेताओं का हाथ है तो सैनिकों ने वाशिंगटन से कहा कि युद्ध जीतने के बाद देश की सत्ता की बागडोर आप अपने हाथ में लीजिए। इन दुष्ट, भ्रष्ट राजनेताओं के हाथ में सत्ता की बागडोर नहीं जाना चाहिए । वाशिंगटन ने कहा "हम स्वयं राष्ट्रपति बनने के लिए नहीं लड़ रहे हैं। आप की यह बात मेरे सिद्धान्तों के विपरीत है।" उन्होंने एक संविधान समिति का गठन किया। लड़ाई जीतने के बाद संविधान के अनुसार चुनाव कराया। यह संयोग की बात है कि चुनाव सम्पन्न होने के बाद वाशिंगटन अमेरिका के प्रथम राष्ट्रपति निर्वाचित हुए। यद्यपि वे चाहते तो बिना चुनाव कराये ही राष्ट्रपति बन सकते थे किन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। यही था वाशिंगटन का जीवन मूल्य। एक तरफ वाशिंगटन का जीवन मूल्य था। दूसरी ओर जनरल परवेज मुसर्रफ का जीवन मूल्य है जो कुर्सी से चिपके रहने के लिए राष्ट्रपति और सेना की कमान एक साथ अपने हाथ में लिये बैठे हैं।

इटली आस्ट्रियन साम्राज्य के अन्तर्गत आता था। लोगों में स्वतंत्र होने की इच्छाजागृत करने का काम जोसफ मेझनी ने किया। चूंकि जोसफ मेझनी ने इटलीवासियों के मन में राष्ट्रीयता का भाव जगाया और स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करने को सबको तैय्यार किया। उन्होंने सैनिकों से और इटलीवासियों से कहा कि मैं आपका नेता अवश्य हूँ और आपलोग नेता के रूप में मानते भी हैं। मुझमें एक कमी है वह यह कि मैं युद्धशास्त्र का पण्डित नहीं हूं। गारीवाल्डी को जोसफ मेझनी जैसी लोकप्रियता नहीं थी फिर भी जोसेफ मेझनी ने गारीवाल्डी के हाथ में कमान संभालने का काम सौंप दिया और स्वयं रायफल लेकर सैनिकों में शामिल हो गये । गारीवाल्डी ने जो आदेश दिया उसका पालन किया। इटली आस्ट्रिया के चंगुल से मुक्त हो गया। जोसेफ मेजनी से गारीवाल्डी ने कहा, "अब राज्य आप संभालिये मुझे छुट्टी दीजिए मैं गांव जाकर अपनी खेती संभालूंगा। मैं युद्ध में निपुण हूँ इसलिये युद्ध के समय सेना की कमान संभाला और इटली को स्वतंत्र कराया। राजकाज चलाना अपने बस की बात नहीं–इसे आप संभालिये।" जेसफ मेझनी और गारीवाल्डी के अपने–अपने

जीवन मूल्य थे। राष्ट्र समर्पित जीवन मूल्य थे। इसलिए ऐसा सम्भव हुआ।

क्या आज इस प्रकार के जीवन मूल्य अपने यहां प्रतिष्ठापित हो सकते है? हमारे देश में ऐसे श्रेष्ठ जीवन मूल्य के लोग थे। महाभारत का युद्ध समाप्त हुआ। पाण्डव विजयी हुए । धृतराष्ट्र बनवास के लिए तैय्यार थे। माता कुंती ने कहा – "धृतराष्ट्र के साथ मैं बनवास के लिये जाऊँगी।" पाण्डव ने कहा, "जीवन में बहुत कष्ट सहा। अब थोड़ा आराम का समय आया तो तुम बनवास को चली। तुमने ही कहा था अपने अधिकार के लिए लड़ो। हम लड़े। भीषण युद्ध हुआ। असंख्य लोग मारे गये। विजय के बाद बड़े भइय्या धर्मराज युधिष्ठर ने राज–काज संभाल लिया है। यदि बनवास जाना था तो युद्ध के लिए प्रोत्साहित क्यों किया।" कुंती ने कहा, उस समय मैने तुम लोगों को युद्ध करने को इसलिये कहा कि तुम अपने क्षत्रिय धर्म का पालन करो। अब मैं अपने धर्म का पालन करने जा रही हूँ। यानी सब प्राप्त करने के बाद आदर्शवादी जीवन जीने की कला भारत में थी। वह कुंती ने अपनाया और अपने जेठ धृतराष्ट्र की सेवा करने उनके साथ बनवास को गई।

आप कह सकते हैं कि यह सब पुराने इतिहास की बात है। आज के भारत मे कहीं ऐसे उदाहरण देखने को मिलते हैं। १९१६ के पहले देश के नेता एक मात्र लोकमान्य तिलक थे। दक्षिण अफरीका से महात्मा गांधी जी आये। महात्मा गांधी एक दूसरे प्रकार से आन्दोलन चलाना चाहते थे। लोकमान्य तिलक ने कहा "जिस प्रकार का आन्दोलन आप चलाना चाहते हैं उस तंत्र के जानकार आप हैं। आन्दोलन चलाइये हम आप के साथ कार्यकर्ता के नाते काम करेंगे।" यदि लोकमान्य तिलक की मृत्यु नहीं हुई होती तो वे गांधी के साथ स्वतंत्रता की लड़ाई उनके कार्यकर्ता बनकार, उन्हें नेता मानकर लड़ते।

जिनकी केवल व्यक्तिवादी, मेरा जीवन, मेरा बड़प्पन, मेरा गौरव, मेरा नाम की सोच है उनके जीवन मूल्य अलग हैं। आज इसी

जीवन मूल्य का प्रभाव है। पुराने नेता जिनके जीवन मूल्य आदर्शवादी थे उनसे आज के नेताओं के जीवन मूल्य मेल नहीं खाते हैं।

आदर्शवादी नेताओं का जीवन मूल्य किस प्रकार का है उसका एक और उदाहरण लोकमान्य तिलक के जीवन से सम्बंधित है। लखनऊ में कांग्रेस का अधिवेशन था। लोकमान्य तिलक सुबह–सुबह बड़े–बड़े वर्तनों में लकड़ी जलाकर पानी गरम कर रहे थे। किसी नेता ने पूछा, "तिलक जी! आप यह क्या कर रहे हैं ?" तिलक जी ने बड़ी विनम्रता के साथ उस नेता से कहा, "दक्षिण भारत के लोग जो प्रतिनिधि के नाते इस अधिवेशन में आये हैं उत्तर भारत की ठण्ड सहन नहीं कर पायेंगे वे गरम पानी से स्नान कर सकें उनके लिए पानी गरम कर रहा हूँ। अरे! यह काम तो आप किसी कार्यकर्ता को कह देते वह कर देता। तिलक जी ने विनम्रता पूर्वक कहा–"क्या मैं कार्यकर्ता नहीं हूँ?" इतना बड़ा नेता होने के बाद भी कार्यकर्त्ता का श्रेष्ठभाव उनके मन में था। यही है आदर्शवादी के जीवन मूल्य। वैसे आजकल नेता बनना आसान है किंतु कार्यकर्त्ता बनना कठिन है। कारण कि कार्यकर्त्ता बनने के लिए आदर्शवादी जीवन जीना बहुत कठिन है। आदर्श जीवन जीने वाले को वैयक्तिक मान, प्रतिष्ठा, पारिवारिक जीवन आदि की चिन्ता कम रहती है।

एक भगवा वस्त्रधारी सन्यासी महात्मा गाँधी के आश्रम में आये और कहा, "मैं आपके आश्रम में रहकर सेवा का कार्य करना चाहता हूँ। जो काम आप बतायेंगे वह करूँगा।" गाँधी जी ने कहा, "बहुत अच्छा है आप रहिए और सेवा का कार्य कीजिए किन्तु आप को एक काम करना होगा। सबसे पहले आपको यह भगवावस्त्र त्यागना होगा। यह वस्त्र आप को सेवा कार्य करने में बाधक बनेगा। आप यदि आश्रम में झाड़ू लगा रहे होंगे तो अन्य लोग आप के हाथ से झाड़ू छीनकर स्वयं सफाई करने लगेंगे। यह आप के सन्यासी होने की पहचान है। त्यागी होने की निशानी है। आप के प्रति श्रद्धा करने को लोगों को बाध्य करेगा।" सन्यासी जी ने कहा,"महात्मा जी! यह भगवावस्त्र तो मेरे सन्यासी होने की पहचान है। इसे उतार देने पर तो मेरी पहचान ही समाप्त हो जायेगी।" गांधी जी ने कहा, "हां, यदि सेवा कार्य करना

चाहते हैं तो अपनी पहचान, अपना बड्प्पन मिटाना होगा ।"

लालबहादुर शास्त्री भारत के प्रधान मंत्री बने। उनके बच्चे स्कूल तांगा से जाते थे। उनके पास इतने रूपये नहीं थे कि वे अपनी निजी कार खरीद सकें। जैसे तैसे पैसे बचाकर, कुछ पंजाब बैंक से कर्ज लेकर एक कार खरीदी। असमय उनकी मृत्यु हो गई। पंजाब नेशनल बैंक का कर्ज उनकी पत्नी ललिता शास्त्री ने चुकाया। यह था लालबहादुर शास्त्री का जीवन मूल्य। आज के सांसदों और मंत्रियों के पास बे हिसाब धन है। उन्हें व्यक्तिगत सुख सुविधा पर चिन्ता ज्यादा है न कि एक आदर्शवादी जीवन बिताने की। वे त्याग और ईमानदारी का जीवन मूल्य निर्धारित करने को पागलपन कहते हैं।

पण्डित मदन मोहन मालवीय लखनऊ से वाराणसी जा रहे थे। व्यस्तता के कारण स्टेशन देर से पहुँचे। गाड़ी छूट न जाय वे बिना टिकट गाड़ी में बैठ गये। उनसे न रास्ते में किसी ने टिकट पूछा और न ही वाराणसी निकास द्वार पर। बाहर एक कार्यकर्त्ता उनकी प्रतिक्षा में खड़ा था। मालवीय जी ने उनसे कहा, "दौड़कर जाओ वाराणसी से लखनऊ का एक टिकट लाओ।" वह सोचने लगा कि अभी अभी लखनऊ से वाराणसी आये हैं। वाराणसी से लखनऊ का टिकट क्यों मंगा रहे हैं। मालवीय जी के दुबारा कहने पर वह टिकट ले आया। मालवीय जी ने टिकट देखा और फाड़कर फेंक दिया। कार्यकर्ता ने मालवीय जी से पूछा, "मालवीय जी! यदि टिकट फाड़कर फेकना ही था तो मंगाया क्यो?" मालवीय जी ने कहा, "मैं बिना टिकट आया था। रेलवे का नुकसान न हो इसलिये, उसके खाते में टिकट का पैसा लखनऊ से वाराणसी का जमा हो गया।" यह मालवीय जी का अपना जीवन मूल्य था। आज तो बड़े–बड़े नेता बिना टिकट पकड़े जाते हैं। समाचार पत्रों में यह सब प्रकाशित होता हैं किन्तु नेता जी को शर्म नहीं आती है, कारण कि जीवन मूल्य में इतनी गिरावट आ गई है कि यह सब उनको अनुचित नहीं लगता है।

पण्डित दीनदयाल जी ट्रेन से यात्रा कर रहे थे। वे समाचार सुनने के लिए अपने पास एक छोटा ट्रांजिस्टर रखते थे। समाचार सुनने का जब समय आया तो उन्होंने ट्रांजिस्टर निकाला कुछ सोच कर ट्रांजिस्टर बजाना उचित नहीं समझा। सामने की सीट पर बैठे हुए सज्जन के पास ट्रांजिस्टर था, उनसे ट्रांजिस्टर चालू करने को कहा। वे चुप बैठे रहे। पण्डित जी ने दुबारा आग्रह किया तो वे ट्रांजिस्टर चालू कर दिये। उन्होंने पण्डितजी से पूछा कि आप अपना ट्रांजिस्टर क्यों नहीं बजाते। पण्डित जी ने कहा, "मेरा ट्रांजिस्टर का लाइसेन्स पीरीयड समाप्त हो गया है। बिना लाइसेन्स रिन्यू कराये बजाना उचित नहीं समझा।" नियमों का कठोरता से पालन करना पण्डित जी का स्वभाव था। आज कितने लोग ऐसा करते हैं ? पण्डित जी की यह विशेषता उनके जीवन मूल्य को परिलक्षित करती है।

बाबू जयप्रकाश नारायण जी ने आपातकाल में जन जागरण किया। आपातकाल के विरूद्ध बहुत बड़ा आन्दोलन किया। हजारों लोगों के साथ जेल गये। देश में राजनीतिक स्वतंत्रता के बाद सबसे बड़ा जन आन्दोलन था। आपातकाल समाप्त हुआ । जनता पार्टी बनी। चुनाव में कांग्रेस पार्टी के चंगुल से देश को मुक्त कराने का श्रेय बाबू जयप्रकाश नारायण को ही था किन्तु स्वयं सत्ता से दूर रहकर मोरारजी देशाई को उन्होंने प्रधानमंत्री बनाया। यह था लोकमान्य जय प्रकाश नारायण का जीवन मूल्य। दूसरा कोई होता तो प्रधानमंत्री की कुर्सी स्वयं हथिया लेता किंतु जय प्रकाश नारायण ने ऐसा नहीं किया। पद व धन का जब तक अहंकार रहा है तब तक शक्ति अर्जित करना कठिन है। यदि दो निरंहकारी व्यक्तियों की शक्ति १+१=२ होती है तो अंहकारी व्यक्तियों की शक्ति .१+.१=.२ होती है। अंहकार (.) का कार्य करता है ।

माना कि अ और ब दो व्यक्ति मिलकर प्रेम से एक साथ काम करते हैं तो जब वे संगठन के कोष्टक $(अ+ब)^2$ के रूप में आते हैं तो उनका वर्ग बना $अ^2+ब^2+२$ अब दोनों की व्यक्तिगत संगठनात्मक

शक्ति बढ़ने के साथ संगठन के लिए 2 अब का लाभ होता है यानी दोनों की शक्ति का दूना लाभ।

यदि अ और ब दो कार्यकर्ता आपस में वैमनस्य के साथ काम करते हैं तो संगठन के कोष्टक $(अ-ब)^2$ के रुप में आते हैं तो उनका वर्ग बना $अ^2+ब^2-2$ अब दोनो की शक्ति बढ़ी किन्तु संगठन के खाते में दोनो की शक्ति का दुगुना 2 अ ब का नुकसान हुआ ।

सदस्यो की संख्या एक से दो, दो से तीन, तीन से चार, चार से पाँच आदि–आदि बढ़ती है किन्तु जब कार्यकर्त्ता जुड़ते है तो 1 और 1 मिलकर 11 होते हैं । एक और आया तो वह संख्या 111 होती है। यदि एक और आ गया तो 1111 हो जाती है। जो संगठन कार्य में लगे हैं उन्हे यह बात समझना होगा ।

आदर्शवादी व्यक्ति के अपने व्यक्तिगत और पारिवारिक जीवन का ध्यान नही रहता है । उनके पास अपने काम करने का समय ही नही रहता है । अपना निज का कुछ करने की इच्छा नही होती है । वह सदैव यही चाहता है कि दुसरो का जीवन सफल हो। वे अपने लिए अत्यन्त कठोर किन्तु दुसरों के लिए मृदुल होते हैं। दूसरों का दुःख देख उनके हृदय में पीड़ा होती है । वह सदैव यही सोचता रहता है कि इसकी सहायता कैसे करें ।

"वैष्णव जन तो तेणें कहिए जो पीर पराई जाणे रे"। राज्य सूय यज्ञ के समय श्री कृष्ण ने सबसे पूछा की आप कौन काम कर सकेंगें? सबकी इच्छानुसार सबके विभाग अलग–अलग बाँट दिया।भगवान कृष्ण ने कहा, मैं भोजन होने के बाद जूठन उठाने का कार्य करुँगा। अर्थात् चक्रवर्तियों का नेतृत्व करने वाला पुरुष जूठी पत्तलें उठाने का काम स्वयं मांग लेता है।

अपने सामने दो तरह के जीवन मूल्य हैं। हमें यह देखना है कि जो विशाल ध्येय हमने अपने सामने रखा है उसको यदि प्राप्त करना है अर्थात् राष्ट्र निर्माण करना है तो इन जीवन मूल्यो में से कौन सा जीवन मूल्य हम अपनाएं । हमें यह देखना होगा कि

सामुहिक जीवन के नाते हममे से हर एक का जीवन मूल्य क्या हो? किस प्रकार के नेतृत्व की अपेक्षा बड़े काम में हुआ करती है। केवल पद और स्थान के कारण मिलने वाला बड़प्पन वास्तविक बड़प्पन नहीं है। वास्तविक बड़प्पन पद और स्थान पर अवलम्बित नहीं होता है। वह अन्तर्गत मूल्यों पर आधारित होता है। उसका आधार है व्यक्ति की आन्तरिक योग्यता। वही व्यक्ति के कार्य विचार और व्यवहार का वास्तविक मानदण्ड है ।

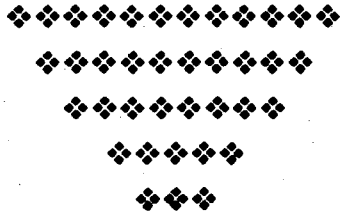

वीरव्रती

संगठन में कठिनाई आती है। उनको भी झेलना पड़ता है। यों तो यह धरती वीरों को जन्म देनेवाली है। इसने कितने वीरों को जन्म दिया है उसकी गणना सम्भव नहीं है ।

मानव जाति को तम से प्रकाश की ओर मृत्यु से अमृतत्व की ओर ले जाने का प्रयास करने वाले सभी देशों, सभी कालखण्डों में ऐसे महापुरूष हुये हैं ।

राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ ने अपने एकात्मतास्त्रोत में ऐसे वीरों का संक्षेप मे उल्लेख किया है । श्री रामकृष्ण परमहंस, रमण महर्षि, कैंसर से पीड़ित प. पूज्य गोलवरकर जी, कोमल आयु के खुदीराम बोस आदि वीरवृत्ति के कारण ही आत्मोत्सर्ग कर सके ।

वीरता का वास्तविक स्रोत आंतरिक है। उसका अविष्कार मानसिक, बौद्धिक व आन्तरिक स्तरों पर भी होता रहता है। सिद्धान्त को प्रत्यक्ष व्यवहार में लाने के लिए अपने सामान्य जीवन में "योगः कर्मसु कौशलम्" का परिचय देने वाले व्यवहारिक प्राणी इस श्रेणी में आते हैं। प्रासंगिक वीरता और स्थायी वीर वृति दोनो अलग–अलग बातें हैं। सम विचार समूह के बीच कायर भी वीर बन जाता है किन्तु कारागार में अफ्रिकी नेता मंडेला नेल्सन व अण्डमान की जेल में कठिन यातना झेलने वाले वीर सावरकर और रांची के जेल में बंद बिरसा मुण्डा के समान वीरत्व कायम रखना अत्यन्त कठिन है। यह अनिवार्य नहीं कि जो एक समय वीर थे तो उनमें स्थायी रूप से वीरता बनी रहे। सामुहिक आन्दोलनों में वीरों की संख्या बढ़ जाती है किन्तु ऐसे वीर कार्यकर्त्ताओं का अगला जीवन निराशाजनक होता है। ध्येयवाद के लिए प्रासंगिक वीरता नहीं वीरवृत्ति अभिप्रेत है। यदि वीर वृत्ति की जड़ें गहरी न रहीं तो प्रसंगबस उत्पन्न वीरता की विपरीत प्रतिक्रिया हो सकती है। महाराणा प्रताप, आजाद चन्द्रशेखर, मंगल पांडे, असफाक उल्ला, रामप्रसाद विस्मिल, मदन लाल धींगरा, दशम गुरू के पुत्र फतेह सिंह, जोरावर सिंह ये

सब जन्मजात वीरवृत्ति के थे। वीरवृत्ति उनका स्थायी स्वभाव था। भट्ठी में परीक्षा सोने व चांदी की ही ली जाती है शीशे की नहीं । शीशे का तुरंत पिघल जाना जगत प्रसिद्धि है।

वीरता की संकल्पना बहुआयामी तथा बहुस्तरीय है। इसका एक आयाम कालावधि भी है—तात्कालिक, जीवनव्यापी, प्रासंगिक उद्रेक, क्षणिक, चिरकालिक, प्राकृतिक व स्थायी स्वभाव ।

परीक्षा के समय वीरव्रतियों को आत्म ग्लानि से बचाने वाले तत्व भी है। गुफा में छिपकर बैठे हुये रावर्टब्रूस के लिये मकड़ी का निरन्तर प्रयास, पृथ्वीराज चौहान के लिये कवि चन्द बरदाई की कविता—"चार बांस चौबीस गज अंगुल अष्ट प्रमाण—तेहि ऊपर सुलतान है मत चूको चौहान," महाराणा प्रताप के लिए मित्र का पत्र और भामाशाह की भेंट यह सब देखने के लिए थीं। यदि इन महापुरूषों की वीरवृत्ति की जड़े गहराई तक न होती तो कुछ भी नहीं हो सकता था।

वीरवृत्ति को आन्तरिक स्तर तक पहुंचाने की प्रक्रिया सभी धर्म ग्रंथों में दी गई है। श्रीमद्भागवत गीता में सभी ग्रंथों का निचोड़ संक्षेप में मानव जाति के सामने रखा है ।

योगेश्वर कृष्ण द्वारा गीता में वर्णित वीरव्रती वह है जो —

मुक्त संगो अनहंवादी धृत्युत्साह समन्वितः।
सिद्धय सिद्धयोनिर्विकारः कर्ता सात्विक उच्चते।।

आसक्ति रहित, अहंकार शून्य, धैर्य व उत्साह से युक्त कार्य की सफलता या असफलता से हर्ष और शोक आदि के विकार से मुक्त व्यक्ति ही सात्विक व्यक्ति है। वीरव्रतियों की परख करने की बस यही एक कसौटी है।

यदि वीरवृत्ति की जड़े गहरी न रहीं तो प्रसंगबस विपरीत प्रक्रिया हो सकती है। यह सत्य है कि परिस्थिति के अति तीखे प्रहार ऐसे ही पुरूषों पर होते हैं। एकाधबार क्षणिक आत्मग्लानि होना असम्भव नहीं है ।

औरंगजेब बड़ा अत्याचारी था। भारतवर्ष की सारी धरती को अपने "दीन" के रंग में रंग देना चाहता था। इसने देवी देवताओं के सारे मन्दिर तोड़ डाले। जोर जबरदस्ती करके किसी की लोकलाज नहीं छोड़ी। इस दुष्ट शासक ने हिन्दुओं की बहू बेटियाँ को बलपूर्वक छीन ली और दुष्टजनों की भेंट चढ़ा दी। इस विपत्ति के समय श्री गुरू तेगबहादुर आगे आये। उन्होंने दिल्ली जाने का मन बना लिया। अपने भरोसे के साथियों भाई मतीन दास छिब्बर, भाई सतीदास छिब्बर, तथा भाई दयालदास आदि को साथ लेकर दिल्ली की ओर प्रस्थान कर दिये। सरहिन्द के हाकिम ने उनके गिरफ्तार होने की सूचना औरंगजेब के पास भेज दिया। श्री गुरू तेगबहादुर को लोहे के पिंजरे में बन्द करके दिल्ली भेजा गया।

श्री गुरूजी एवं वीर साथियों पर क्रूर अत्याचार का दौर लगातार पांच दिन तक चलता रहा । शाही काजी कोतवाली आकर श्री गुरूजी पर दबाव डालता रहा कि वे हिन्दू से गैर हिन्दू बनना कबूल कर लें। श्री गुरूजी को तीन दिन तक पानी पीने को नहीं दिया गया। लोहे का लम्बा खम्भा तपाया गया और उस खम्भे से श्री गुरूजी की पीठ सटा दी गई। ऊपर से गरम बालू छोड़ी गई किन्तु श्री गुरूजी देह से विदेह हो गये थे। उनकी काया जल गई। फफोले पड़ गये। श्री गुरूजी के सामने उनके साथ आये भाई दयालदास को उबलते पानी के भाण्डे में डालकर मार दिया गया। भाई मतीदास को लकड़ी की सहतीर में बाँधकर ऊपर से नीचे तक दो टुकड़े में चीर दिया गया। भाई सतीदास को रूई में लपेटकर जला दिया गया। शाही काजी ने फतवा दिया कि श्री गुरू तेगबहादुर को कत्ल कर दिया जाये। श्री गेरू तेगबहादुर ने अपना शीश कटा दिया। साधुओं की रक्षा में उन्होंने अपना अद्‌भुत बलिदान दिया।

भाई लक्खी शाह ने चाँदनी चौक से श्री गुरू तेग बहादुर जी का धड़ रात में ले भागा। अपने ही घर का सारा सामान इकट्ठा कर आग लगा दी। श्री गुरूतेग बहादुर शरीर को नश्वर तथा मिट्टी के समान समझा। ११ नवम्बर सन् १६७५ को श्री तेगबहादुर की हत्या

चांदनी चौक दिल्ली में की गई थी । उन्होंने शीष दिया किंतु अपनी निष्ठा नहीं छोड़ी। यह कैसे सम्भव हुआ। श्री गुरूजी वीरव्रती, साहसी और देह रखते हुए भी विदेह थे। ऐसा वीरव्रती होना असाधरण है। जहां स्वार्थवस लोग क्या क्या पाप इस नश्वर शरीर के लिए करते हैं। श्री गुरूजी ने अपना सर्वस्व बलिदान किया किंतु अपनी निश्ठा पर आंच उस वीरव्रती ने नहीं आने दी – परित्राणाय साधुनाम, अपने को बलिदान कर दिया। वीरव्रती का अनुपम उदाहरण इस नश्वर शरीर को स्वेच्छा से त्याग कर उन्होंने संसार के सामने प्रस्तुत किया। यह सब जन्मजात वीरव्रती होने के कारण सम्भव हुआ।

कार्यकर्त्ता

जो निष्काम भाव से, निश्चल, निर्लिप्त होकर सामाजिक कार्य करते हैं तथा अपने साथ सहकारी तैय्यार करते हैं, जो काम मिला वह प्रसन्नता से करते हैं वे निष्ठावान कार्यकर्त्ता हैं।

हम सब एक ही यात्रा के यात्री हैं । कोई आगे है और कोई पीछे इसकी चिन्ता किये बिना कार्य करते रहना अच्छे कार्यकर्त्ता का लक्षण है। कार्यकर्त्ता "ब्लड ग्रुप ओं" की भांति होना चाहिए । जैसे ओ ग्रुप का ब्लड सभी शरीर में लग सकता है उसी तरह कार्यकर्त्ता किसी स्थान पर किसी भी काम को बिना हिचक करने को तैय्यार रहता है।

जैसे पानी का कोई आकार नहीं होता है, जिस बर्तन में है वही उसका आकार है। जो काम संगठन का मिला वही कार्यकर्त्ता का आकार है। कार्य छोटा या बड़ा सब में कार्यकर्त्ता लगा है। मेरा सहयोगी मुझसे बड़ा हो । ऐसी श्रेष्ठ भावना तथा सफलता का श्रेय दूसरों को देना, एक के बाद दूसरों को जोड़ने वाला कार्यकर्त्ता हो।

समूह में कार्य करने की आदत हो। शांतपूर्वक सबकी बातें सुनना। स्पष्ट किंतु प्रियभाषी, निर्भय होकर बोलना, धैर्य पूर्वक सुनना यह गुण कार्यकर्ता में होना चाहिए। सामुहिक निर्णय आवश्यक है। अनुकूल निर्णय न होने पर विरोध प्रकट करना किंतु निर्णय हो जाने पर यह सबका सामुहिक निर्णय है यह मानकर तदनुरूप व्यवहार करना।

सहमति, परिश्रम, जिसके साथ काम करना है उसके साथ विलीनता। मैं हूँ, मेरा कुछ नहीं ऐसा भाव, चैतन्य शक्ति युक्त कार्यकर्ता आवश्यक है। कार्यकर्ता को स्वयं अपना आत्म निरीक्षण करते रहना चाहिए । इससे आत्मबोध होता है । कार्यकर्त्ता को व्यष्टि सापेक्ष नहीं समष्टि सापेक्ष होना चाहिए। जो संगठन करने वाले हैं उन्हें कार्यकर्त्ता की चिन्ता एवं चिंतन करते रहना चाहिए ।

परम निष्ठा, निष्काम भाव, निश्चल निर्लिप्तता कार्यकर्त्ता का

विशेष गुण है। संगठनकर्त्ता को एक बात ध्यान में रखना चाहिए कि तात्कालिक लाभ के कारण अंतिम लक्ष्य को धक्का न लगे। अन्तिम लक्ष्य आखों से ओझल नहीं होना चाहिए । संगठनकर्त्ता को इस प्रकार का संतुलन बनाने की अत्यन्त आवश्यकता है।

जनमत के प्रवाह में सस्ती लोकप्रियता के पीछे बहते जाना सरल है किन्तु सच्चे नेतृत्व का काम यह है कि यदि कोई बात स्वयं को न जंचे तो जनमत प्रवाह के विरूद्ध सीना ठोक कर अपना मत जनता के सामने रखना चाहिए । प्रवाह के साथ बहना कुशल सक्रिय कार्यकर्त्ता का काम नहीं है। लोकनायक जय प्रकाश नारायण ने आपातकाल का प्रबल विरोध कर जनमत को अपनी ओर मोड़ा जबकि परिस्थितियाँ प्रतिकूल थीं। कुशल नेतृत्व की कसौटी है लोक नियंत्रण। जो कमजोर होते हैं, प्रभावहीन होते हैं वे लोकमतावर्तित्व होते हैं।

अपने प्रस्ताव की असफलता पर स्वयं केन्द्रित व्यक्तिवादी व्यक्ति और अन्तर्निष्ठ व्यक्ति की प्रतिक्रिया भिन्न–भिन्न होती हैं। गुरूदेव रवीन्द्र नाथ टैगोर भगवान के प्रति आभार व्यक्त करते हुए कहते हैं–"प्रभु मैंने अपने मन में अनेक वासनाऐं जतन करके रखी थीं। उन वासनाओं की पूर्ति से आपने मुझे वंचित कर मुझे गलतमार्ग पर जाने से बचा लिया है । मैं इसे अब संजोकर रखूंगा।" किसी व्यक्ति की व्यक्तिगत् शक्ति सदैव समान नहीं होती है। भोजन बनाते समय हाथ जलने पर सू–सू करने वाली महिला घर में आग लगने पर जल्दी से बाहर भागती है किंतु जब उसको यह ध्यान में आता है कि छोटा बच्चा तो घर में ही सो रहा है तो उसे बचाने के लिये वह आग में कूद पड़ती है। संकट के समय उसके साहस और शक्ति के प्रतिशत में वृद्धि हो जाती है।

एक बात स्पष्ट है कि संगठन के लिये तीन शक्तियाँ रहती हैं– सिद्धान्तों की आन्तरिक शक्ति, कार्य पद्धति की निजी शक्ति, संगठन की एकात्म शक्ति । परिस्थितियों के अनुसार जो लोग संगठन से जुड़े हैं उनकी निजी शक्ति । यह निजी शक्ति का स्तर उच्चतम हो ऐसा प्रयास कार्यकर्ता को करते रहना चाहिए। राष्ट्र का निर्माण

संगठित एवं ध्येयनिष्ठ कार्यकर्त्ताओं के माध्यम से होता है। भीड़ में सबके उद्देश्य अलग–अलग होते हैं किंतु संगठन में एक लक्ष्य, होता है, जिसकी पूर्ति हेतु सभी एकत्रित आते हैं और सामुहिक प्रयास करते हैं। किसी सिद्धान्त की महत्ता उस पर चलने वाले लोगों की संख्या से प्रकट होती है। संगठन किसी जीवमान इकाई की स्वाभाविक अवस्था है। यदि यह अवस्था न हो तो समझ लेना चाहिए कि समाज निर्जीव हो गया है अथवा समाज चेतना शून्य हो गया है। संगठन का तात्पर्य है पूर्ण अंगांगी भाव। प्रत्येक अंग में यह भाव रहना कि हम शरीर के साथ एकात्म हैं । शरीर के अलग–अलग अवयव होते हैं। सब अपना–अपना काम करते हैं । कोई अवयव दूसरे का काम नहीं कर सकता है । खाने का काम मुंह ही करता है वह काम पैर नहीं कर सकता है। यों तो आध्यात्मिक धरातल पर सभी एक जैसे हैं किंतु भौतिक धरातल में हम यह सिद्ध नहीं कर पायेंगे कि कान, नाक का काम कर सकता है।

यह शरीर अवयवों का न तो संघ है और नहीं महासंघ है किंतु आकार, स्थान, भिन्न–भिन्न होते हुये इसमें एकात्मता है। सभी अवयव मिलकर ही एक सजीव शरीर बने हैं। सिर पर यदि किसी ने डण्डा मारा तो हाथ उसे तुरंत रोकने के लिए उठता है। पैर में कांटा चुभा मुंह से 'सू' की आवाज और आंख में आंसू आ जाते हैं। यह सब कुछ एकात्मता के कारण होता है।

कार्यकर्त्ता एक अर्थवाहक शब्द है जिसका अर्थ है कार्य करने वाला व्यक्ति केवल पदाधिकारी नहीं, एक विशेष कार्य करनेवाला नहीं, एक स्थान पर कार्य करने वाला नहीं बल्कि संगठन के कार्य का विकास करने वाला से सक्रिय कार्यकर्त्ता का अर्थ निकलता है। यदि वह निष्क्रिय है तो संगठन का कार्यकर्त्ता नहीं। प्रकाशहीन व दाहकता विहीन सूर्य नहीं होता है। जो निष्क्रिय हैं वह कैसा कार्यकर्त्ता ।

कार्यकर्त्ता को चाहिए कि वह संगठन कार्य का ठीक प्रकार से आकलन करें। क्रियाशीलता संगठन का सम्यक ज्ञान, व्यावहार कुशलता तथा विचार की स्पष्टता कार्यकर्ता में होनी चाहिए । अनेक प्रकार से कार्य करना है इसलिये चिन्तन चाहिए। क्रियाशील चिन्तन।

चिन्तन का क्रियान्वयन करनेवाला कार्यकर्ता। केवल भारत माता की जय बोलने वाला नहीं। राष्ट्रीय सम्मान का बोध वाला कार्यकर्ता। समाज को जागृत करने वाला कार्यकर्त्ता। जागृत समाज ही राष्ट्र को उन्नति के शिखर पर ले जा सकता है । स्वस्थ समाज के कारण देश सम्मानित हो सकता है।

मनुष्य जीवन चार प्रकार का होता है–यक्तिगत जीवन, पारवारिक जीवन, व्यवसायिक जीवन, सामाजिक जीवन किन्तु सभी जीवन में चरित्र का अपना महत्व है । चरित्र को भी व्यक्तिगत चरित्र, राष्ट्रीय चरित्र की श्रेणी में बांट सकते। कुछ भी हो चरित्र का अपना बड़ा महत्व है। कहा गया है कि Health is lost nothing is lost, Wealth is lost something is lost, if character is lost every thing is lost. सामाजिक जीवन में यदि व्यक्तिगत् चरित्र के साथ–साथ राष्ट्रीय चरित्र भी ठीक–ठीक रहा तो समझो कि सोने में सुहागा हो गया । समाज में विविधता के कारण स्वस्थ समाज का गठन आवश्यक है। संगठन से समाज शक्तिशाली होता है। यदि संगठन कमजोर है तो समाज भी कमजोंर रहेगा। प्रायः संकट में यह समाज संगठित होता है। संगठन कई प्रकार के होते हैं–तात्कालिक संगठन, आर्थिक संगठन, जातीय आधार पर बना संगठन, धार्मिक संगठन तथा राजीतिक संगठन आदि। राजनीतिक संगठन निहित स्वार्थ के कारण खड़े होते हैं ।

स्वस्थ समाज अपने राष्ट्र को सही दिशा में ले जा सकता है। जैसे धोती, चादर, दरी, साड़ी, सबमें एक तत्व धागा है उसी प्रकार चाहे जिस प्रकार का संगठन हो उन सबमें एक ही तत्व है आत्मीयता। इसके अभाव में न संगठन बन सकता है और न ही चल सकता है । अतः आत्मीयता संगठन के लिये एक अनिवार्य एवं महत्वपूर्ण तत्व है। समाज के भी एक साथ रहने का मूल तत्व है आत्मीयता ।

संगठन शब्द की आकृति त्रिकोण है। साध्य, साधन और साधक इसकी तीन भुजाएँ हैं। पहली भुजा है साध्य और दूसरी भुजा है साधक, तीसरी भुजा है साधन जिसमें अपना साध्य अचल है।

शोषित पीड़ित दलितजनों को उद्धार करते हुए इस राष्ट्र को परम वैभव के शिखर पर ले जाना है । साधन जहां कार्यालय, कार्यकर्त्ता, कोष, कार्यक्रम एवं विविध प्रकार की च्येष्टा हैं वहीं साधन में जीवन्त इकाई कार्यकर्त्ता है। कार्यकर्त्ता को निरन्तर कार्य करने की प्रेरणा देना आवश्यक है। प्रेरणा स्वस्फूर्ति के कारण, नाम कमाने के लिए, या निःस्वार्थभाव से कार्य करने के लिए स्फुरित होती है। जे.के. ने लक्ष्मी नारायण मन्दिर बनवाया। लक्ष्मी नाराण गौड़ हो गये नाम पड़ा जे.के. मन्दिर। मन्दिर बनाने की प्रेरणा मिली धार्मिक भावना, धन के तथा नाम के कारण। इसलिये लक्ष्मी नारायण गौड़ हो गये–व्यक्तिगत नाम आगे हो गया । सेवाभाव के कारण सेवा करने की इच्छा हो तो अच्छी बात है। नर्स मरीज की सेवा अनेक प्रकार से करती है। बदले में वेतन पाती है। यदि सेवा कार्य में कोई कमी रह जाती है तो उसे सजा भी मिलती है। ड्यूटी ठीक से न करने का उस पर आरोप लगता है। सेवा करने की प्रेरणा नर्स को सेवा भाव के कारण नहीं अपितु पैसे से मिली है। पैसा न मिले तो सेवाकार्य बन्द। इसी प्राकर कुछ लोग समाज की सेवा निस्वार्थ भाव से करते हैं। कुछ की सेवा में स्वार्थ छिपा रहता है। सेवा पैसे के कारण, सेवा स्वार्थ के कारण, सेवा प्रतिष्ठा भाव के कारण करते है। यों तो निःस्वार्थ भाव से की गई सेवा, ही श्रेष्ठतम है। निःस्वार्थ भाव से सेवा करने वाले बहुत कम हैं।

कार्यकर्त्ता एक वचन है याने व्यक्ति अर्थात् व्यष्टि। उसे अपने समान अनेक कार्यकर्त्ता खड़े करना चाहिए। उसे व्यष्टि से समष्टि बनना है। मक्के का दाना मिट्टी में गिरता है। सड़ता है, गलता है, अपने अस्तित्व को मिटाकर अंकुरित होता है। धीरे–धीरे, संभल–संभल कर बढ़ता है और कुछ दिनों बाद वह व्यष्टि से समष्टि बनकर बाली के रूप में तैय्यार होता है। व्यष्टि से समष्टि बनने के लिए उसे अपने अस्तित्व को मिटाना पड़ा। कार्यकर्त्ता का कार्य से अटूट सम्बन्ध हो, जो कार्य करे वही कार्यकर्त्ता। प्रकाश है दाहकता है इसलिये सूर्य है। यदि प्रकाश नहीं है, दाहकता नहीं है तो सूर्य नहीं है। यदि कार्यकरता है तो कार्यकरता है यदि कार्य नहीं करता

हे तो काहे का कार्यकर्त्ता। कार्यकर्त्ता समय देनेवाला, धैर्य रखने वाला, और किसी से भी गुण लेने वाला होना चाहिए । कार्यकर्त्ता पर्याप्त समय देगा, कष्ट सहेगा और परिश्रम करेगा तो कार्य बढ़ेगा। वह धैर्यवान हो। जल्दबाज न हो किसी कार्य का प्रतिफल देर से आता है । कहा गया है कि–

धीरे–धीरे रे मना धीरे सब कुछ होय।
माली सीचें सौ घड़ा ऋतु आये फल होय।।

कार्यकर्त्ता–मधुमक्खी के स्वभाव का हो। जैसे मधुमक्खी अनेक स्थान से रस लेकर एक साथ इकट्ठा करके शहद का निर्माण करती है। कार्यकर्त्ता को स्थान–स्थान से अनुभव लेकर उसके आधार पर सुदृढ़ संगठन खड़ा करना चाहिए ।

जो निष्काम भाव से, निश्चल भाव से खड़ा है वही संगठन कार्य कर सकता है। देश का भला हो, राष्ट्र, उद्योग और मजदूर का हित हो। यदि ऐसी तीव्र वेदना उसके मन में है तो वह कार्यकर्त्ता हैं। परम निष्ठा, निष्काम, भाव, निश्चल निर्लिप्तता, आर्थिक पारदर्शिता, कार्यकर्त्ता के विशेष गुण हैं। सामाजिक कार्य करते समय आर्थिक सुचिता, तथा स्थिरता मन में हो। व्यष्टि सापेक्ष नहीं अपितु समष्टि सापेक्ष कार्य करने की प्रबल इच्छा कार्यकर्त्ता में होना चाहिए।

कार्यकर्त्ता के ध्यान में रहे कि स्नेह के समान कोई बन्धन नहीं है, तृष्णा के समान बहा ले जाने वाली कोई धारा नहीं है। राग–द्वेष अग्नि के समान कोई अग्नि नहीं होती है । यदि कार्यकर्त्ता के ध्यान में ये तीन बातें हैं तो वह सुखी है और स्वस्थ मन से संगठन का कार्य कर सकता है।

मनुष्य पर जब तक संकट नहीं आता है तब तक वह अपने सुप्त गुणों से परिचित नहीं होता है। संकट मानव जीवन को उच्च आदर्श पर पहुंचाने की रामबाण औषधि है । इसलिये कार्यकर्त्ता को संकट के समय घबराना नहीं चाहिए ।

समाज में नीच प्रवृति के लोग होते हैं उन्हे सुधारना आसान काम नहीं है। अग्नि बुझ सकती है किंतु उसमें शीतलता नहीं आती

है। नीच व्यक्ति नष्ट हो सकता है किंतु उसके स्वभाव में परिवर्तन आना आसान काम नहीं है। अग्नि को सम्मान देने के लिए आप उसे अपने सर पर रख लीजिए किंतु स्वभाववश वह सर पर रखने वाले को ही जला देती है। इसी प्रकार नीच स्वभाव के लोग सदैव कुत्ते की दुम की तरह टेढे ही रहते हैं। चाहे जितना प्रयास कीजिये उनमें सुधार आना बहुत कठिन काम है । फिर भी ऐसे लोगों के सुधारने का प्रयास करते रहना चाहिए । निराश होने की कोई बात नहीं। यदि सुधार नहीं होता है तो बिना निराश हुए अंत में तुलसीदास के इस कथन का स्मरण कर सन्तोष कर लेना चाहिए कि–

नीच निचाई नहिं तजें जो पावें सत्संग।
तुलसी चन्दन विटप वसि विष नहिं तजत भुजंग।।

जैसे विशधर सांप चन्दन के वृक्ष पर लिपटे रहते हुए अपना विश नहीं छोड़ता है उसी प्रकार नीच नीचता नहीं छोड़ता है चाहे जितना सत्संग क्यों न हो। संगठक को एक बात का ध्यान रखना चाहिए कि मनुष्य किसी प्रयोजन से सम्बन्ध जोड़ता है। सम्बन्ध जोड़ने का प्रायः यह लक्ष्य होता है कि जो प्राप्त नहीं है वह प्राप्त हो जाय और जो प्राप्त है उसकी रक्षा भी होती रहे और रक्षित वस्तु में निरन्तर वृद्धि होती रहे। यदि स्वार्थ भौतिक सुख से सम्बन्धित है तो संगठन से जुड़े व्यक्ति से संगठनात्मक लाभ होने की आशा करना व्यर्थ है। यदि व्यक्ति का स्वार्थ राष्ट्रभाव से प्रेरित है तो धीरे–धीरे संस्कारित होकर राष्ट्र देवता के श्री चरणों में पूर्ण समर्पित हो जायेगा।

मछुवारा मछली पकड़ने के लिए जल में प्रवेश करता है जो जल में आने वाले किसी संकट की चिन्ता न करते हुए सभी विघ्न को पार करके अपना लक्ष्य सिद्ध कर लेता है। पुरूषार्थ बिना कुछ भी नहीं हो सकता है। संगठक इस बात का ध्यान रखे कि पुरूषार्थ के अभाव में कुछ भी सम्भव नहीं है। सफलता जो परिश्रमी है अपने संकल्प के लिये सजग हैं । आगे बढ़ने की जिनके मन में उमंग और उत्साह है । ऐसे दृढ निश्चयी और पुरूशार्थी के चरण चूमती है।

जिस प्रकार चांदी सोने के साथ मिश्रित होने पर सोने का रूप धारण कर लेती है उसी प्रकार गुणी और महत्वपूर्ण व्यक्ति से सम्पर्क होने पर अनुभवहीन व्यक्ति गुण सम्पन्न एवं प्रतिभाशाली हो जाता है।

गंध रहित मिट्टी जिस प्रकार सुगंध भरे फूल उत्पन्न कर देती है। उसी प्रकार गुणों को न प्रकट करने वाले सज्जन के गुण छिपे नहीं रहते हैं । गुणों को छिपाकर रखना बड़ा कठिन है। संगठक को सज्जन लोगों के अन्दर छिपे गुणों की तलाश करते रहना चाहिए।

दूध मिला पानी भी दूध समझा जाता है। गुणी व्यक्ति के साथ रहनेवाला व्यक्ति भी गुणी समझा जाता है ।

सिंह भूखा रहने पर भी घास नहीं खाता है । जो ईमानदार है, चरित्रवान, हैं संकट के समय भी उन्हें चरित्रवान बना रहना चाहिए। चरित्रवान बना रहना मनुष्य का गुण है। अपनी सच्ची और दृढ़ आस्था का त्याग नहीं करना चाहिए। सच्चे कार्यकर्त्ता की यही विशेषता है।

एक बात ध्यान में रहे कि जब विपत्तियों से बचते रहने पर भी मनुष्य की मृत्यु निश्चित है तो विपत्तियों का सामना करते हुए वीर गति प्राप्त करना कहीं अच्छा है । विपत्तियों पर विजय के प्रयास में प्राप्त होने वाली मृत्यु सौभाग्य का संकेत हैं। यदि मृत्यु को व्यर्थ बनाकर मृत्युंजय बनना है तो विपत्तियों के जीतने के लिये संघर्ष करना आवश्यक है।

हमें यह बात ध्यान में रखना होगा कि भौतिक शक्तियों का सदुपयोग किया जाय। यदि इन शक्तियों को विवेक पूर्ण नियंत्रण में नहीं रखा जायेगा तो मनुष्य का साहस दुस्साहस में बदल जाएगा। केवल भौतिक शक्तियों पर निर्भर रहने से काम नहीं बनता है । भौतिक शक्तियाँ प्रायः अन्धी होती हैं। उन्हें अच्छे नेतृत्व की आवश्यकता होती है ।

बुद्धिमान लोग अपने मन का रहस्य चंचल मन वाले व्यक्ति से नहीं बताते हैं। जिस प्रकार फूटे बर्तन में जल नहीं टिकता है

उसी प्रकार छोटे और ओछे लोगों के पेट से गुप्त बातें बाहर निकल आती हैं । वह जहां भी जायेगा उन बातों का ढिढोरा पीटेगा । इससे भारी अनर्थ होता है ।

जो क्रोधी हैं उनसे सभ्य व्यवहार की अपेक्षा नहीं करनी चाहिए। क्रोधी का अविवेक विनाशक सिद्ध होता है। जिन्हें अच्छे बुरे की पहचान नहीं होती हे वे प्रायः असत्य बातों के प्रेमी होते हैं। अपनी विपरीत बुद्धि के कारण वे सच्चाई, स्वाभिमान व सहिष्णुता आदि में अवगुण देखने लगते हैं । उदार स्थिति में सत्य सम्मिलित रहता है । उससे वंचित रहना आत्म विश्वास कहलाता है। इसलिये असत्य के आधीन न रहना मनुष्य की अपनी आत्म रक्षा के लिये आवश्यक है । जो ऐसा नहीं करते वे दूसरों का कुछ न बिगाड़ कर अपने ही अहित का कारण बनते हैं।

जो व्यक्ति सुअवसरों को पहचानकर कार्य करते हैं उन्हें ही सफलता मिलती है। इसलिए कार्य प्रारंभ करने से पूर्व का सुअवसर और परिस्थितियों का ध्यान रखना चाहिए ।

मनुष्य का स्वभाव है कि वह एक निर्धारित मार्ग पर चलता है किन्तु नये मार्ग का निर्धारण सूझ–बूझ और उत्साही व्यक्ति ही कर सकता है। सामान्य व्यक्ति प्रवाह के झोंके में ही बह जाते हैं परन्तु पुरूषार्थी पुरूष भाग्य की अवहेलना करके अपना मार्ग प्रशस्त करते हैं उनके लिए किसी घिसे पिटे मार्ग पर चलना कठिन होता है । वे नई परम्पराओं का निर्धारण करते हैं । किसी ने ठीक ही कहा है–

लीक–लीक गाड़ी चले लीकैं चले कपूत।
लीक छोड़ तीनों चलें शायर, सिंह, सपूत।।

वसन्त के आने पर वृक्षों में नये जीवन की शुरूआत होती है। प्रकृति इन कार्यों को टालती नहीं है कार्य टालने से उसका फल भी टल जाता है । कर्तव्य हीन व्यक्ति कार्य टालता रहता है। एक बार कार्य टालने से पुनः करने की प्रेरणा बड़ी कठिनाई से प्राप्त होती है।

जब मनुष्य के मन में कार्य करने की प्रेरणा पैदा होती है, कार्य करने का वही उचित समय होता है । उसके बाद कार्य करने

से उसकी सफलता असफलता में बदल जाती है । इसलिये जब कार्य करने की प्रेरणा मनुष्य के मन में उठे तो सम्भवतः वही कार्य करने का उचित समय होता है।

कार्य सिद्धि के लिये प्राप्त साधनों का सदुपयोग महत्व की बात है। मनुष्य को चाहिए कि कोई काम हाथ में आते ही मन को एकाग्र करके प्राप्त साधनों का सदुपयोग करें। मन की अस्थिरता से व्यक्ति के कार्य में रूकावटें आने लगती है। मन को स्थिर कर कार्य करने से ही कार्य सम्पन्न होते हैं । मन की स्थिरता से बुद्धि का विकास होता है। कार्य करने की क्षमता प्राप्त होती है। मन की अस्थिरता से व्यक्ति विचलित हो जाता है। किसी तत्व को जान लेना ही पूर्ण कार्य है। भाग्य भरोसे कोई व्यक्ति कर्तव्यनिष्ठ नहीं हो सकता है। कर्तव्यपालन में भाग्य का कोई स्थान नहीं होता है। मनुष्य को चाहिए कि भाग्य को दूर रखकर पुरूषार्थ करे तभी कार्य सिद्ध होंगे। पुरूषार्थ और कार्य करने के सही ढंग से भाग्य को अनुकूल बनाया जा सकता है।

जब किसी व्यक्ति का कार्य उसका लक्ष्य बन जाता है तो फल की प्राप्ति गौड़ हो जाती है। सफलता प्राप्त करने का यह महत्वपूर्ण सिद्धान्त है । जो व्यक्ति अपनी सिद्धियों के प्रति शंकित रहते हैं। सफलता की माला उनके गले में नहीं पड़ती है। संघर्ष करने वाले व्यक्ति की सफलता उसकी मुट्ठी में होती है। किसी संगठन के वित्त सचिव को कभी भी सन्तोषी नहीं होना चाहिए। वित्त सचिव का सन्तोषी होना ठीक नहीं है। इससे संगठन के कोष में वृद्धि रूक जाती है । इसका भाव यह है कि वृत्त सचिवों को अपने को वृत्त का स्थायी नहीं मानना चाहिए। कोष संगठन के हित के लिए होता है। इसलिये संगठन कोष में वृद्धि होनी चाहिए किन्तु जितना आवश्यक है उतना ताकि संगठन का काम कोष के बिना रूक न जाय। कोष अधिक होने से अधिक वर्षा की तरह दुःखदायी होता है। जैसे अधिक वर्षा से गीला अकाल पड़ता है वैसे अधिक कोष से अपनी आदतें बिगड़ने की सम्भावना रहती है। कम वर्षा से

सूखा अकाल पड़ता है उसी प्रकार कम धन से आवश्यक कार्य भी रूक जाते हैं। इसलिये धन उतना चाहिए जितना आवश्यक है न कि बहुत कम और न ही अधिक ।

यदि कार्यकर्त्ता कठोर बातें बोलता है यह उसका बहुत बड़ा दोष है। क्रोध उत्पन्न होने पर वाणी कठोर हो जाती हे। जो सुनता है उसके मन में क्रोध उत्पन्न होता है जिससे विवाद उत्पन्न होने की सम्भावना अधिक होती है। कहा भी गया है कि शस्त्र का घाव मिट जाता है किन्तु वाणी का घाव जीवन भर नहीं भर पाता है ।

आग से सदैव जलने पर भय बना रहता है, इसलिये उससे सम्बन्ध जोड़ने के लिसे सदैव सावधान रहना चाहिए। आग में स्वयं जल मरना। आग का दुरूपयोग है। आग की दहन शक्ति का आत्म रक्षा के लिये उपयोग करना उसका सदुपयोग है।

अपने राष्ट्र की समस्यायें बिना प्रखर राष्ट्र भक्ति के हल नहीं होंगी। राष्ट्र भक्ति से ओतप्रोत व्यक्ति ही राष्ट्र निर्माण कर सकते हैं। विभिन्न क्षेत्रों के कार्यकर्त्ता यदि इसी भाव से काम करेंगे तो सफलता मिलेगी।

उपेक्षा से काम बढ़ता है। अपेक्षा से काम घटता है। संगठन के स्तम्भ कहे जाने वाले कार्यकर्त्ता यदि सफलता का श्रेय लेने में पीछे रहते हैं तो वहां काम बढ़ता है। ज्यों–ज्यों कार्यकर्त्ताओं में ध्येयबाद बढ़ता है त्यों–त्यों कार्य भी बढ़ता है । यदि ध्येयवाद में कमी आई तो संगठन कार्य गिरता है । ध्यायेवाद से छुट्टी लेकर जो प्रतिष्ठा प्राप्त करने की ओर बढ़ रहे हैं तो वहां कार्य घटेगा । जनरल रोमिन नें जब वाटर टैंक कीचड़ में फँस गया तो उसे धक्का देकर बहार निकाला जबकि उस पर बैठे आफीसर को कीचड़ में फंसे टैंक को बाहर निकालने के लिए धक्का देने में संकोच था।

यदि लोगों को सुसंस्कारित करना है तो वे स्वंय अपना आदर्श उपस्थित करें। मनुष्य की अपेक्षायें हैं जब वह पूरी नहीं होती

है तो आवाज तेज हो जाती है। नियंत्रण हो सके इसका उपाय मनुष्य को नहीं सुझाई देता है। अपने को दूसरों के सामने सदैव प्रयोग के रूप में रखना। दूसरों को सुधारने के स्थान पर अपने को स्वयं सुधारें। यदि आप सुधरे तो जग सुधरा। त्यागी पुरूषों के अभाव में समाज या संगठन बिगड़ जाता है। भौतिक सुखों की अपेक्षा को मन से निकाल देना ही त्याग है। सत्य के खोजी का प्रवेश शुल्क है प्रलोभन का त्याग। त्यागी को अपने त्याग का अभिमान होता है इस प्रकार के अभिमान का त्याग करना ही वास्तविक त्याग है। सेवा समाज के लिए, त्याग अपने लिए अनिवार्य है। उस सुख का त्याग कर दो जो किसी का दुःख हो ।

अपने अधिकार के त्याग और दूसरे के अधिकार की रक्षा से सुन्दर समाज की रचना होती है। आध्यात्मवाद का प्रारंभ त्याग से है ओर अन्त सेवा में होता है। उसी प्रकार भौतिकवाद का प्रारंभ सेवा से और अन्त त्याग से होता है । साधक का प्रथम पुरूषार्थ ममता का त्याग। उसके बिना साधक साधन परायण नहीं हो सकता है। सभी कर्मो में फल की इच्छा का सर्वथा त्याग। वस्तु के त्याग से नहीं इच्छा के त्याग से मुक्ति मिलती है। मनुष्य स्वयं भोगी बनना चाहता है और वह दूसरों को त्यागी देखना चाहता है। जब हम अपने वर्तमान की तुलना अतीत से करते हैं तब हमारे मन में सुख–दुःख के भाव पैदा होते हैं। दुःख का कारण इर्ष्या है । सुख का मूल सन्तोष है। असन्तोष दुःख की जड़ है। "ये दिन सब दिन नहीं रहेंगे" यह एक छोटा सा वाक्य दुखी मनुष्य को निश्चिन्तता और सुखी मनुष्य को सजगता प्रदान करता है। आनन्द अपने भीतर है जो दुखियों को देखकर करूणित होने एवं सुखियों को देखकर प्रसन्न होने से प्राप्त होता हैं ।

किसी भी अच्छे कार्य के लिए सबसे बड़ा गुण आदर्श के प्रति समर्पण है। इसके अभाव में अधिक से अधिक योग्यता रखने वाला व्यक्ति भी संगठन के लिये अधिक उपयोगी नहीं हो सकता है। यदि योग्यता और समर्पण साथ–साथ हों तो बहुत अच्छा है।

व्यष्टि से समष्टि

1. संगठन में संख्याबल का अपना महत्व है। यदि संख्याबल गुणवत्ता युक्त हो तो अति उत्तम है ।
2. धनबल संगठन के लिये आवश्यक हो किंतु वह धन संगठन के सदस्यों द्वारा संगठन के कार्य के लिए दिया गया हो ।
3. संगठन में सभी निर्णय सामुहिक होना चाहिए। सामुहिक निर्णय समूह में कार्य करने से किसी को अभिमान करने की गुंजाइश नहीं रहती है और न कभी किसी में हीन भावना आती है।
4. सामुहिकता में अपने आप का सम्पूर्ण विलय आवश्यक है। यदि सामुहिकता में कोई अपनी अलग पहचान बनाए रहता है तो वह ठीक नहीं है। विलय हल्दी व चूने जैसा हो। दोनों अपनी पहचान खोकर एक रंग हो जाते हैं। वैसा ही विलय होना चाहिए।
5. निर्णय लेते समय बैठक में उपस्थित सभी लोगों को अपना विचार प्रकट करने का अवसर मिलना चाहिए। निर्णय होने के बाद यह सबका निर्णय है ऐसा मान कर काम करना चाहिए।
6. मत भेद हो सकते हैं किन्तु मन भेद नहीं होना चाहिए।
7. संगठन के सिद्धांतो के विपरीत बहुमत का निर्णय भी संगठक को स्वीकार नहीं करना चाहिए। संगठन टूटता है तो कोई हर्ज नहीं। दुबारा खड़ा किया जायेगा।
8. अनुशासनात्क कार्यवाही काफी सोच–विचार कर करना चाहिए। पहले निर्णय एडहाक हो बाद में अंतिम निर्णय लिया जाय।
9. संगठन के कार्यकर्त्ता को किसी व्यक्ति विशेष के पीछे नहीं खड़ा होना चाहिए। भारतीय मजदूर संघ में सभी कार्यकर्त्ता हैं कोई नेता नहीं है। नेता एक अपमानजनक शब्द अपने यहां माना जाता है।
10. कार्यकर्त्ता व्यष्टि है उसे समष्टि बनना है जिसके लिए उसे कष्ट उठाना पड़ेगा।
11. कार्यकर्त्ता जैसा होगा वैसी छवि संगठन की दिखाई देगी।

जैसे बत्ती पर लगा शीशा जिस रंग का होगा बत्ती का रंग वैसा ही दिखाई देगा।

12. कोई कार्यकर्त्ता किसी कार्य या क्षेत्र या यूनियन के लिए Indispensable अनिवार्य नहीं होना चाहिए यदि है तो उसको बदल दिया जाय। कारण कि उसने काम अपने को केन्द्र बनाकर खड़ा किया है। इसलिये कार्य Indispensable अनिवार्य हो और कार्यकर्त्ता dispensable होना चाहिए।
13. कार्य और कार्यकर्त्ता का सम्बन्ध प्रगाढ़ होना चाहिए । परछाई की तरह नहीं जो समयानुसार बढ़ती–घटती रहे।
14. जब दो कार्यकर्त्ता मिलकर कार्य करते हैं तो काम बढ़ता है। यदि मतभेद से काम करेंगे तो काम बढ़ने के स्थान पर घटता है।
15. भारतीय मजदूर संघ में पद एक व्यवस्था है अधिकार नहीं है।
16. सफलता पर सफलता मिलने पर मन बढ़ता है। यदि असफलता हाथ लगी तो मन हताश और निराश हो जाता है। जैसे तालाब में जल बढ़ने के साथ–साथ कमल बढ़ता है किंतु जब तालाब सूखने लगता है तो कमल धीरे–धीरे नहीं घटता है बल्कि जड़ से सूख जाता है–

    बढत, बढत सम्पत्ति सलिल मन सरोज बढ़ जाय।
    घटत–घटत पुनि न घटे वरू समूल कुम्हिलाय।।

    ध्यान रहे सफलता और विफलता एक दूसरे के पूरक है।
17. संगठन का आवश्यक तत्व है आत्मीयता।
18. बुद्धिमान एवं चालाक की अपेक्षा कम बुद्धिमान एवं समर्पित कार्यकर्त्ता अच्छा है।
19. कुछ कार्यकर्त्ता समर्पित तो होते हैं किंतु सक्षम नहीं होते । कुछ सक्षम होते हैं किंतु समर्पित नहीं होते। इसलिये समर्पित को सक्षम तथा सक्षम को समर्पित बनना चाहिए।
20. सफलता की एक मात्र कुंजी सतत प्रयास है।
21. संगठन में एक दूसरे की कमी वरदास्त करना चाहिए।

22. संगठन की सफलता पांच बातों पर निर्भर करती है – अधिष्ठान, कर्ता, भिन्न–भिन्न साधन व विविध प्रकार की च्येष्ठा एवं दैवं (पूर्व संस्कार)

23. कार्यकर्त्ता का सम्बन्ध संगठन के साथ इतना प्रगाढ़ होना चाहिए जैसे दूध का पानी से, मछली का पानी से, कीचड़ का पानी से।

    दूध खौलाते समय जब पानी जलता है तो दूध में उबाल आता है उसे अपने मित्र का जलना असह्य हो जाता है। यदि दो चार बूंद पानी के छींटे दिया जाय तो उबाल कम हो जाता है। मछली पानी बिना तड़प–तड़प कर मर जाती है। कीचड़ का पानी जब सूखता है उसके विछोह में उसका कलेजा फट जाता है।

24. अंहकार कर्तत्ववान के पास जाता है। सामान्य कतृत्ववान के पास अंहकार नहीं जाता है। कार्यकर्त्ता अंहकार मुक्त हो इसकी खोज करते रहना चाहिए।

25. अपरिहार्य कारणों से पारिवारिक जिम्मेदारियों से छुट्टी लेने में कुछ कार्यकर्त्ता असमर्थ हो जाते हैं। ऐसे कार्यकर्त्ता को कुछ धन की चिन्ता करना अनिवार्य हो जाता है । उसके कार्य की प्रेरणा त्याग की है। वह कार्यकर्त्ता ही है और संगठन के प्रति समर्पित है।

26. संगठन का केन्द्र मैं हूं ऐसा भाव आने से कार्यकर्त्ता में गिरावट आती है। अंहकार आने से दूसरों के प्रति तुच्छता का भाव बढ़ता है।

27. किसी भी सत्कार्य की दृष्टि से कार्यकर्त्ता का सबसे महत्वपूर्ण गुण है उसका आत्म समर्पण।

28. स्वस्थ नेतृत्व के विकास का क्रम है–अमानी मान दो मान्यो, लोक स्वामी त्रिलोक धृत। स्वयं मान सम्मान की अपेक्षा न रखते हुए अन्य सहकारियों को सम्मानित करते रहना। इसी कारण से अन्य सहयोगी उसे मान्यता देते हैं। इस प्रकार वह लोक नायक बन जाता है।

शून्य से सृष्टि तक

भारतीय मजदूर संघ की स्थापना 23 जुलाई 1955 को हुई इससे पूर्व एटक का गठन 31 अक्तूबर 1920 को हुआ जिसमें कुल 64 यूनियने 140584 सदस्यता, इण्टक का गठन 3 मई 1947 को हुआ जिसमें कुल 200 यूनियने 575000 की सदस्यता, एच.एम.एस. का गठन 24 दिसम्बर 1948 जिसमें कुल 119 यूनियन 103790 की सदस्यता, यू.टी.यू.सी. लेनिन सारिणी का गठन 30 अप्रैल 1949 को हुआ जिसमें 254 यूनियनें 331991 सदस्यता थी।

भारतीय मजदूर संघ की स्थापना के समय उसके पास न कोई रजिस्टर्ड यूनियन थी और नहीं सदस्यता। इस प्रकार शून्य से सृष्टि निर्माण का यह कठिन प्रयास था जो आगे चलकर साकार हुआ। संगठन की स्थापना के समय श्रम क्षेत्र के विभिन्न पहलुओं पर उस समय विचार विमर्श हुआ । सर्वप्रथम यहीं विचार सामने आया कि यदि नये संगठन का निर्माण किया गया तो उसके कारण मजदूर एकता में बाधा आयेगी, साथ ही यह भी सोचा गया कि आदर्श श्रम संगठन के अभाव में देश और मजदूर को बहुत नुकसान उठाना पड़ेगा ।

ट्रेड यूनियनें, सही ट्रेड यूनियन के आधार पर चलें, मजदूर तथा देश का कल्याण उसका उद्देश्य रहे, मजदूर उद्योग तथा राष्ट्र तीनों के हित एक ही दिशा में जाने वाले हैं यह उसकी मान्यता रहे, अधिकार तथा कर्तव्य दोनों पर वह समान आग्रह रखे, व्यक्तिगत नेता गिरी, राजनीतिक दलगत स्वार्थ, मालिक, सरकार, विदेशी विचारधारा का प्रभाव इन सब बातों से यह सर्वथा मुक्त रहे, राजनीतिक दल निरपेक्ष होकर सभी राष्ट्रवादी तत्वों के लिए एक सामान्य मंच के नाते कार्य करें, भारतीय संस्कृति तथा परम्परा के प्रकाश में मजदूरों को मजदूरों के लिए और मजदूरों द्वारा चलाई गई संस्था इस भूमिका का निर्वाह करें और मजदूरों का सम्पूर्ण राष्ट्र के साथ मनोवैज्ञानिक एकात्म्य स्थापित करते हुए अधिकतम उत्पादन के द्वारा राष्ट्रोत्थान के कार्य में महत्व पूर्ण सहयोग देने में वह पूर्णतया सिद्ध हो इस

कसौटी पर वर्तमान श्रम संस्थायें असमाधान कारक ही सिद्ध हुई। इस कारण उपरिनिर्दिष्ट तत्वों की पूर्ति करनेवाले श्रम संगठन का निर्माण भारत की ऐतिहासिक आवश्यकता मानी गई।

संगठन की दृष्टि से न कोई यूनियन थी न ही कोई कार्यकर्त्ता ओर न ही था कोष । संगठन कार्य शून्य से ही प्रारंभ करना था। इस दृष्टि से भारतीय मजदूर संघ की स्थिति अन्य केन्द्रीय श्रम संगठनों से बहुत भिन्न थी। अन्य संगठनों के पास कार्यकर्त्ता, कोष, सदस्य संख्या आदि पहले से ही विद्यमान थे। केवल एक ध्वज को छोड़ कर दूसरे ध्वज को ही स्वीकार करने की बात थी। इस परिस्थिति में भारतीय मजदूर संघ को शून्य में से सृष्टि का निर्माण करना था।

प्रारंभ में हमें फुटकर काम ही शुरू करना पड़ा। उन दिनों बी.एम.एस. कार्यकर्त्ताओं की संख्या धीरे–धीरे बढ़ रही थी। सभी क्षेत्रों में प्रतिस्पर्धा की यूनियने थीं। हमारे कार्यकर्त्ता इस क्षेत्र के लिए अनभ्यस्त तथा मजदूरों के लिये अपरिचित थे और मुकाबला ख्यातनाम नये नेताओं से था। किसी नये संगठन को प्रारंभ से ही कुचल देने की मार्मिक प्रवृत्ति तथा सरकार के

विरोधी खैय्ये का मुकाबला करना कठिन था। इन प्रतिकूल परिस्थितियों में कहीं से भी आशा की किरण दिखाई नहीं देती थीं । धीरज के साथ निष्काम भाव से प्रयास जारी रखने की क्षमता विशुद्ध आदर्शवाद के आधार पर धीरे– धीरे कार्य बढ़ता गया। कार्यकर्त्ताओं का अनुभव भी बढ़ता गया। अनुभवी कार्यकर्त्ता तैय्यार हुए। धन संग्रह की क्षमता और जनशक्ति भी बढ़ती गई। समझौता वार्ता, पंचाट तथा श्रम अदालत आदि मोर्चो पर कार्य करने की कुशलता भी बढ़ती गई।

भारतीय मजदूर संघ का विकास क्रम कुछ अनोखे ढंग का है। प्रायः पद्धति यही होती है कि प्रारंभ में अखिल भारतीय समिति का निर्माण किया जाय। तदुपरांत प्रादेशिक व स्थानीय इकाइयाँ

क्रमशः बनाई जायँ। यह ऊपर से नीचे आने वाली प्रणाली है। भारतीय मजदूर संघ ने इसके विपरीत भूमिका स्वीकार की। सर्वप्रथम छोटी–बड़ी स्थानीय यूनियनों का निर्माण किया जहां–तहां प्रदेश में यूनियनों की संख्या बढ़ गई उन–उन उद्योगों में प्रादेशिक तथा अखिल भारतीय महासंघ का निर्माण किया गया। इस प्रकार विधिवत् संगठित कई प्रादेशिक महासंघ एवं औद्योगिक महासंघ बने।

वर्ष 1960 के आधार पर मूल्य सूचकांक की नई तालिका में परिवर्तन सूत्र (Linking Factor) में त्रुटियां थी जिसके कारण श्रमिकों को जो मंहगाई भत्ता मिलता था उसमें कमी आई। मजदूरों में व्यापक असन्तोष था। परणिाम स्वरूप भारतीय मजदूर संघ की पहल पर संयुक्त मोर्चा बना समाजवादी नेता गोरे जी को यह बात पसन्द नहीं आई। उन्होंने कहा "जिस मंच पर संघी वी.एम.एस. प्रतिनिधि रहेगा उस मंच से हम भाषण नहीं देगें। ठेगड़ी जी प्रस्तावना करके मंच से नीचे आ गये। गोरे जी मंच पर बैठे । 20 अगस्त 1963 की बम्बई के मजदूरों की हड़ताल हुई। लकड़ा वाला समिति बनी, लिकिंग फैक्टर में सुधार किया गया। इसी प्रकार मद्रास कलकत्ता, कानपुर, दिल्ली और अहमदाबाद के लिये समितियां बनी और वहां के लिकिंग फैक्टर में सुधार किया गया। भारतीय मजदूर संघ का मजदूर आन्दोलन में यह पहला प्रवेश था। मूल्य सूचकांक की त्रुटियों की ओर भारतीय मजदूर संघ का ध्यान गया था। एच.एम.एस, एच.एम.पी ने भारतीय मजदूर संघ का साथ दिया।

प्रथम अधिवेशन

भारतीय मजदूर संघ का प्रथम अधिवेशन 12-13 अगस्त 1967 को दिल्ली में सम्पन्न हुआ जिसमें 12 वर्षों तक संयोजक रहे दत्तोपन्त ठेगड़ी महामंत्री चुने गये। इस अधिवेशन में 246902 सदस्यों वाली 541 यूनियनों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया।

राष्ट्रीय मांग पत्र

22 सितम्बर 1969 को भारतीय मजदूर संघ ने महामहिम राष्ट्रपति महोदय को भारत के मजदूरों का राष्ट्रीय मांग पत्र तत्कालीन राष्ट्रपति वी.वी. गिरी को सौंपा। जिसमें केवल श्रमिकों का ही नहीं अपितु पूरी मानव शक्ति के विचार के साथ सभी कर्मचारियों को बतौर विलम्बित वेतन बोनस दिये जाने की मांग सामिल थी। अन्य नेताओं को शंका थी कि केन्द्रीय कर्मचारियों को बोनस कैसे मिलेगा। संयोग की बात है कि बंगलौर नगर पालिका के सफाई कर्मचारियों के बोनस सम्बन्धी विवाद का निपटारा करते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि बोनस देर से दिया हुआ वेतन है इसलिये कर्मचारियों को बोनस मिलना चाहिए । भारतीय मजदूर संघ द्वारा बोनस सबको दिये जाने की मांग को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिये गये निर्णय से बहुत बड़ा बल मिला ।

राष्ट्रीय श्रम आयोग

भारत के सर्वोच्च न्यायालय के निवर्तमान न्यायाधीश गजेन्द्र गडकर की अध्यक्षता में गठित श्रम आयोग को 'श्रमनीति' के सम्बन्ध में लिखित ज्ञापन दिया गया जो बाद में एक अधिकृत ग्रंथ बन गया।

रेल कर्मचारियों की हड़ताल

9 मई 1974 को रेल कर्मचारियों ने अनिश्चित कालीन हड़ताल की, जो लम्बी चली। जार्ज फर्नान्डीज संयोजक थे। वे हजारों लोगों के साथ जेल में थे। जेल से उन्होंने पत्र लिखकर श्री दत्तोपन्त ठेंगड़ी को अधिकार दिया कि वे हड़ताली नेताओं से बात करके किसी निर्णय पर पहुंचे। ठेगड़ी जी ने वार्ता करके निर्णय लिया कि हड़ताल समाप्त कर दी जाय। इस प्रकार 27 मई 1974 को हड़ताल समाप्त हुई। सभी गिरफ्तार नेता जेल से बाहर आये।

भारतीय मजदूर संघ द्वारा आपातकाल में आन्दोलन

26 अगस्त 1975 को बोनस कटौती वापस करने व

आपातकाल समाप्त करने की मांग लेकर भारतीय मजदूर संघ ने द्वार सभायें करके गिरफ्तारी दी जिसमें 7500 लोगों को जेल जाना पड़ा। कार्यकर्त्ता कई माह तक जेल में रहे। कुछ एक तो 22 माह तक जेल में रहे।

अद्‌भुत प्रगति

1977 के बाद भारतीय मजदूर संघ ने अद्‌भुत प्रगति की। वर्ष 1975 के आस–पास जहां यूनियन 1313 थी वह 1978 में बढ़कर 1515 हो गई तथा सदस्यता 8 लाख 40 हजार हो गई। मार्च 1991 में यूनियनों की संख्या 1776 तथा सदस्यता 18 लाख 5 हजार से ऊपर हो गई।

राष्ट्रीय अभियान समिति

1980 में राष्ट्रीय अभियान समिति बनी। इस समिति में शामिल होकर भारतीय मजदूर संघ ने जन जागरण के लिए अनेक कार्यक्रम किये।

भारतीय मजदूर संघ के एच.एम.एस. में विलय का प्रस्ताव

वर्ष 1978 में जनता पार्टी शासन में आई थी। जनसंघ का जनता पार्टी में विलय हो चुका था। श्री मधुलिमये ने सोचा कि बी. एम.एस. का विलय एच.एम.एस. में हो जाय तो ठीक रहेगा। उन्होंने श्री ठेगड़ी जी को पत्र लिखकर विलय के लिये आग्रह किया था। श्री ठेगड़ी जी ने उन्हें पत्र लिखकर कहा कि Marry in haste repent in leisure and rest, जल्दीबाजी में की गई शादी आगे के लिये पछतावा होती है। जब पत्र से बात नहीं बनी तो श्री मोहन धारिया के यहां स्व. पू. बालासाहब देवरस को चाय पर आमंत्रित किया गया। मोहन धारिया ने भी बालासाहब देवरस के सामने बी. एम.एस. का एच.एम.एस. में विलय का प्रस्ताव रखा । उन्होंने यह कहकर विलय का प्रस्ताव खारिज कर दिया कि संगठन स्विच आन और स्विच आफ की तरह नहीं चलते हैं।

1984 कम्प्यूटरीकरण विरोधी वर्ष

भारतीय मजदूर संघ का मत है कि मनुष्य के हाथों से सम्पन्न होने वाले काम में कम्प्यूटरों का दखल नहीं होना चाहिए। शोध, सुरक्षा, अंतरिक्ष विज्ञान तथा समुद्री विज्ञान आदि ऐसे क्षेत्र हो सकते हैं जहां कम्प्यूटर एवं अन्य उन्नत तकनीक का प्रयोग किया जाय।

वर्ष 1987 में बी.एम.एस. का सर्वत्र प्रसार

भारतीय मज. संघ की सदस्यता जो 1987 में 32 लाख 86 हजार थी वह 1991 म 38 लाख 89 हजार, 1995 में 45 लाख 12 हजार 1995 के अन्त में बढ़कर 47 लाख को पार कर गई। 1986 की सदस्यता को आधार मानकर केन्द्र सरकार ने एक बार पुनः सदस्यता की जांच की। भारतीय मजदूर संघ अन्य केन्द्रीय श्रम संगठनों को पीछे छोड़कर प्रथम स्थान पर पहुंचा है। अब तीसरी बार सदस्यता सत्यापन होने जा रहा है जिसमें भारतीय मजदूर संघ ने 4287 यूनियनें 8318345 सदस्यता का दावा किया है। अब बी. एम.एस और इण्टक कें मध्य प्रतिद्वंदिता है शेष संगठन बहुत पीछे छूट गये हैं।

विश्व सद्भाव

1983 में राष्ट्रीय एकता व निःशस्त्रीकरण और रंगभेद के विरोध जैसे मामलों पर श्रम संगठनों द्वारा मिली–जुली कार्यवाही के लिए दस केन्द्रीय श्रम संगठन का एक संयुक्त मंच था जिसमें भारतीय मजदूर संघ सामिल था।

बी.एम.एस सिद्धान्तों को विश्व स्तर पर मान्यता

श्रम संगठन किसी भी राजीनतिक दल के अन्तर्गत नहीं होने चाहिए। सभी सामाजिक संगठनों को स्वतंत्रता, स्वायत्तता, तथा स्वावलम्बन की जरूरत है। भारतीय मजदूर संघ ने प्रारंभ से इस बात पर जोर दिया। इस सिद्धान्त को विश्वभर में उस समय

मान्यता मिली जब 13 से 20 नवम्बर 1990 में वर्ल्ड फेडरेशन आफ ट्रेड यूनियन्स जैसे अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का विश्व स्तर का सम्मेलन मास्को में हुआ। यद्यपि भारतीय मजदूर संघ इस वर्ल्ड फेडरेशन आफ ट्रेड यूनियन्स से संलग्न नहीं है फिर भी भारतीय मजदूर संघ को विशेष आमंत्रित के नाते बुलाया गया था। इस विश्व सम्मेलन में विश्व के सभी देशों से केन्द्रीय श्रम संगठनों के प्रतिनिधि आये थे। ऐसे विश्व सम्मेलन में जो चर्चा हुई और निर्णय हुए वह भा.म.संघ के सिद्धान्तों को विश्व स्तर पर मिली मान्यता का परिचायक है।

इस सम्मेलन में 123 देशों के 400 यूनियनों से 1350 प्रतिनिधियों ने भाग लिया था। भारतीय मजदूर संघ की ओर से जी. प्रभाकर व रामभाऊ जोशी ने भाग लिया था। कानफ्रेंस में सामिल सभी प्रतिनिधियों ने इस सम्मेलन की विशेषता बताते हुए कहा कि WFTU Unani mously resolved to remain independent from government, Political parties and employers (वर्ल्ड फेडरेशन ऑफ ट्रेड यूनियन सरकार, राजनीतिक दल व सेवायोजकों से स्वतंत्र रहेगा) भारत के दो संगठन एटक और सीटू ने इस निर्णय के प्रति अपना विरोध जताया। सम्मेलन में लाल झण्डा उतार कर श्वेत ध्वज फहराया गया। स्मरण रहे कि इससे 38 दिनों पूर्व रूस के सभी श्रम संगठन एकत्रित आये थे। उन्होंने राजनीतिक मोर्चे को खारिज कर एक नया महासंघ बनाया, जिसका नाम जनरल कनफेडरेशन आफ ट्रेड यूनियन रखा ।

भूतलिंगम कमेटी की रिपोर्ट

1981 में जनता पार्टी के शासन काल में भूतलिंगम कमेटी की रिपोर्ट आई थीं। सभी केन्द्रीय श्रम संगठनों ने मिलकर नेशनल कम्पेन कमेटी का गठन किया था। भूत लिंगम कमेटी का खुलकर विरोध किया। साथ ही ESMA और NSA कानून का विरोध किया। देशव्यापी आन्दोलन, प्रदर्शन और धरना हुए। कुछ कारणवश NCC टूट गई और भारतीय मजदूर संघ ने तय किया कि आगे अकेले अपने

बलपर आन्दोलन करेंगे, जो आज तक जारी है किन्तु औद्योगिक महासंघों को उद्योग स्तर पर संयुक्त मोर्चा बनाने की इजाजत दे रखा है। भारतीय मजदूर संघ द्वारा निर्धारित विशेष नीतियाँ :–

विदेशी तकनीक के बारे में अपनी नीति है -

(क) जो हमारे अनुकूल हों उसे ज्यों का त्यों अपनाना चाहिए। अर्थात् स्वीकार Adapt करना चाहिए।

(ख) जिस तकनीक का कुछ उपयोग है और कुछ को छोड़ना आवश्यक है तो कुछ छोड़ना और कुछ अपनाना चाहिए । अर्थात् Adopt करना चाहिये ।

(ग) जो तकनीक अपने अनुकूल नहीं है। पूरी की पूरी हानिकारक है उसे Reject करना।

(घ) कुछ ऐसी तकनीक जो हमारे लघु उद्योग, कुटीर एवं घरेलू उद्योगों के अनुकूल विदेशों में नहीं बन सकती है उसे प्रयत्न पूर्वक अपने देश में तैयार करना अर्थात् Evolve करना।

राष्ट्रीय तकनीक नीति

इस नीति के अन्तर्गत अलग–अलग उद्योगों के स्वरूप पर विचार होना चाहिए। तकनीक का सम्बन्ध केवल मालिक और मजदूर से है यह कहना उचित नहीं है। यह तो नई रचना और संस्कृति है। देश के दक्ष लोगों को लेकर राष्ट्रीय तकनीक नीति बनाई जाय।

आर्थिक हित पक्षों की गोलमेज सम्मेलन

भारतीय मजदूर संघ का सुझाव है कि सभी आर्थिक हित पक्षों का सम्मेलन कर देश की उद्योग नीति, उत्पादन नीति, आयनीति, मूल्यनीति, निवेशनीति तथा वेतन नीति का निर्धारण किया जाय ताकि सभी प्रकार की विसंगतियाँ दूर की जा सकें।

समझौता वार्ता में राष्ट्र के प्रति प्रतिबद्धता

समझौता वार्ता के समय मालिक, मजदूरों के साथ उपभोक्ता

पक्ष को शामिल किया जाय ताकि किसी भी समझौता में राष्ट्रहित की अनदेखी न हो।

उत्पादन मूल्य की घोषणा

उपभोक्ताओं की राहत और उनके विश्वास के लिये उत्पाद का लागत मूल्य घोषित किया जाय।

विश्वकर्मा सेक्टर

ऐसे लोग जो किसी के न मजदूर हैं और न ही मालिक। जो श्रम करके अपनी जीविका का उपार्जन करते हैं जैसे रिक्सा चालक, मोची, नाई, बढ़ई, लोहार, आदि द्वारा अपना काम करना और रोजी रोटी कमाना ऐसे लोगों को विश्वकर्मा सेक्टर में लाने का काम सर्वप्रथम भारतीय मजदूर संघ ने किया है। अब चीन ने भी इसे स्वीकार किया है।

डंकल प्रस्ताव

20 अप्रैल 1993 को भारतीय मजदूर संघ ने सर्वप्रथम लाल किला मैदान में विशाल रैली कर डंकल प्रस्ताव का विरोध किया । जो आगे चलकर गैट बदलकर विश्व व्यापार संगठन बना । गैट पर अंतिम हस्ताक्षर 14–अप्रैल 1994 को हुआ । एक जनवरी 1995 में विश्व व्यापार संगठन बन गया ।

रोजगार परक नीतियाँ

भारतीय मजदूर संघ ने प्रथम बार अपनी पालघाट की बैठक 1999 में यह निर्णय लिया कि सरकार रोजगार परक योजना बनाए।

विश्व व्यापार संगठन के विरूद्ध विशाल रैली

16 अप्रैल 2001 को रामलीला मैदान में विशाल रैली करके विश्व व्यापार संगठन का जबरदस्त विरोध किया। इस रैली के बारे में कहा गया कि 'न भूतो न भविष्यत्' ।

प्रदेश स्तर पर प्रदर्शन

सितम्बर 2002 में प्रदेशों में 38 स्थानों पर प्रदर्शन हुए जिसमें लाखों कर्मचारियों ने भाग लिया।

वर्ष 2003 में जुलाई व अगस्त मास में 400 जिला स्तर पर प्रदर्शन हुए । भारतीय मजदूर संघ का कार्य निरंतर बढ़ रहा है। इससे यह बात स्पष्ट होती है कि देश के मजदूरों ने इसे राष्ट्रवादी श्रम संगठन के नाते स्वीकार किया है ।

भारतीय संस्कृति का प्रतीक भगवाध्वज

भारतीय मजदूर संघ का उदय होने के पश्चात मजदूर क्षेत्र के क्षितिज पर भारतीय संस्कृति से जुड़े प्रतीक भगवा ध्वज पहली बार दिखाई देने लगा ।

भारतीय मजदूर संघ ने विश्व प्रेम, तपस्या और त्याग का, भारत की श्रेष्ठतम परम्परा से चला आया भगवाध्वज कामगार क्षेत्र में फहराया। पवित्र भारतभूमि से जिसका नाता है ऐसा रंग भारतीय जीवन प्रणाली को सर्वोत्तम और सर्वोदात्त मूल्यों का प्रतीक है ।

प्रतीक चिन्ह

भारतीय मजदूर संघ का प्रतीक चिन्ह भी पूर्णतया भारतीय है। इसके ऊपर जो चक्र है वह उद्योगीकरण दिखाता है। अनाज की बाली खेती और समृद्धि दर्शाती है । बंधी हुई मुट्ठी संगठित शक्ति का परिचय देती है और सबसे महत्वपूर्ण है अंगूठा इसके कारण ही मनुष्य अन्य प्राणियों से ज्यादा प्रगति कर सका। इस दृष्टि से यह प्रतीक भी अनोखा है ।

श्रमिकीकरण

भारतीय मजदूर संघ ने कहा कि देश की उन्नति, उद्योगों की प्रगति में पूंजी के साथ पसीने की बराबर की स्वीकृति हो। इसलिये उद्योगों का श्रमिकीकरण, श्रमिकों का राष्ट्रीयकरण, राष्ट्र का औद्योगीकरण हो। उद्योग के प्रबन्ध और पूंजी में मजदूरों की प्रभावी भागीदारी हो।

मजदूरों को राष्ट्रभक्त बनाया जाय। पूरे राष्ट्र में उद्योग धन्धों का विकास किया जाय।

भारतीय मजदूर संघ का मानना है कि मजदूर उठेगा तो राष्ट्र गिर नहीं सकता, उद्योग धन्धे भी ठीक से चलेंगे। यदि मजदूर गिरता है तो राष्ट्र उठ नहीं सकता है और उद्योग की स्थिति ठीक नहीं रहेगी। इसलिये मजदूर, राष्ट्र तथा उद्योग तीनों हितों का ध्यान देकर उद्योग धन्धों को चलाना श्रेयस्कर होगा।

अन्त में यही कहना उचित होगा कि भारतीय मजदूर संघ एक ऐसा संगठन है जिसकी अन्य संगठनों से तुलना सम्भव नहीं है यह "सुई जेनरिस" (Sui generis) है। जैसे सूरज सूरज है, चन्द्रमा चन्द्रमा है वैसे भारतीय मजदूर संघ भारतीय मजदूर संघ है। वह जैसा है उस जैसा दूसरा कोई नहीं–अतुलनीय है।

साधना का मर्म

व्यक्तित्व के सांचे से व्यक्तित्व गढ़े जाते हैं। यदि हम अभिभावक हैं तो अपने बच्चों को गढ़ने के लिये अपने व्यक्तित्व का सांचा तैयार करें। यदि हम शिक्षक हैं तो स्वयं को कुछ इस तरह गढ़े कि हमारी छात्र–छात्रायें हमारा अनुकरण करने में अपने को गौरवान्वित अनुभव करें । यदि हमने समाज सेवा का व्रत लिया है तो औरों को अपने उत्कृष्ट आचरण से शिक्षित करें । ध्यान रहे निंदा करने, बुराई करने से किसी में सुधार नहीं आता है। सुधार केवल प्यार देने और केवल उदाहरण बनकर जीने से आता है। जीवन साधना का एक ही मर्म है–उदाहरण बनकर जीना । अपना जीवन कुछ ऐसा हो, जो स्वयं जीता–जागता प्रशिक्षण केन्द्र बन सके ।

बड़प्पन की कीमत

तुम अकेले खड़े रहो सुख आयेगा, दुःख आयेगा । निराशा आयेगी, आशा आयेगी किसी के साथ उन सबका बंटवारा न करते हुए सबको सहन करके अकेले खड़े रहो । जो पर्वत शिखर पर अकेला खड़ा रह सकता है वह कोई बड़ा काम कर सकता है । अकेलापन बड़प्पन की कीमत है । यह कीमत यदि देना संभव नहीं

हो तो नीचे की तराई में जो हजारों पेड़ हैं, उनके साथ रहो, लेकिन यह आशा मत करो कि चोटी के एक मात्र पेड़ में तुम्हारी गिनती होगी । यदि नेतृत्व करना है, कार्यकर्ता के रूप में रहना है तो उसकी कुछ कीमत भी चुकानी पड़ती है ।

रामप्रकाश मिश्र द्वारा लिखित पुस्तकें

1. राष्ट्र की अस्मिता
2. आर्थिक दासता का फन्दा डंकल प्रस्ताव
3. बढ़ती मंहगाई घटते सूचकांक
4. समर्पण
5. 28 अगस्त पर्यावरण दिवस

बूंद यदि चाहती तो बरस कर प्यासी धरती को तृप्त कर देती। सरोवर तट पर पड़ी सीप में गिरकर मोती बन जाती किंतु अहं बस अपना अस्तित्व बनाए रखने के चक्कर में एक दिन ओस बनकर टपक गई, साँप ने उसे चाट लिया तो विष बन गई। यह तो उसकी अपनी नियति है, जो न मोती बनने को तैयार है और न बादल बनकर बरसने को तो उसकी अधोगति होगी ही। यही हालत मनुष्य की है वह अहं छोड़ता नहीं। अपने अस्तित्व में स्वंयता को सुरक्षित रखकर ही सब कुछ करना चाहता है और बनना चाहता है समर्पित। अरे! समर्पण मांगता है लोभ–मोह से विरक्ति एवं अहंकार से मुक्ति।

प्रकाशक संस्कार निष्ठा :
सम्पादक : पारसनाथ ओझा, 1 सी0, स्वांग, जिला-बोकारो, पिन-129128
मुद्रक : सुरभि प्रिन्टेक्स, रामगढ़, झारखण्ड, फोन न0 : 06553-223969

मूल्य 15/- रूपये मात्र